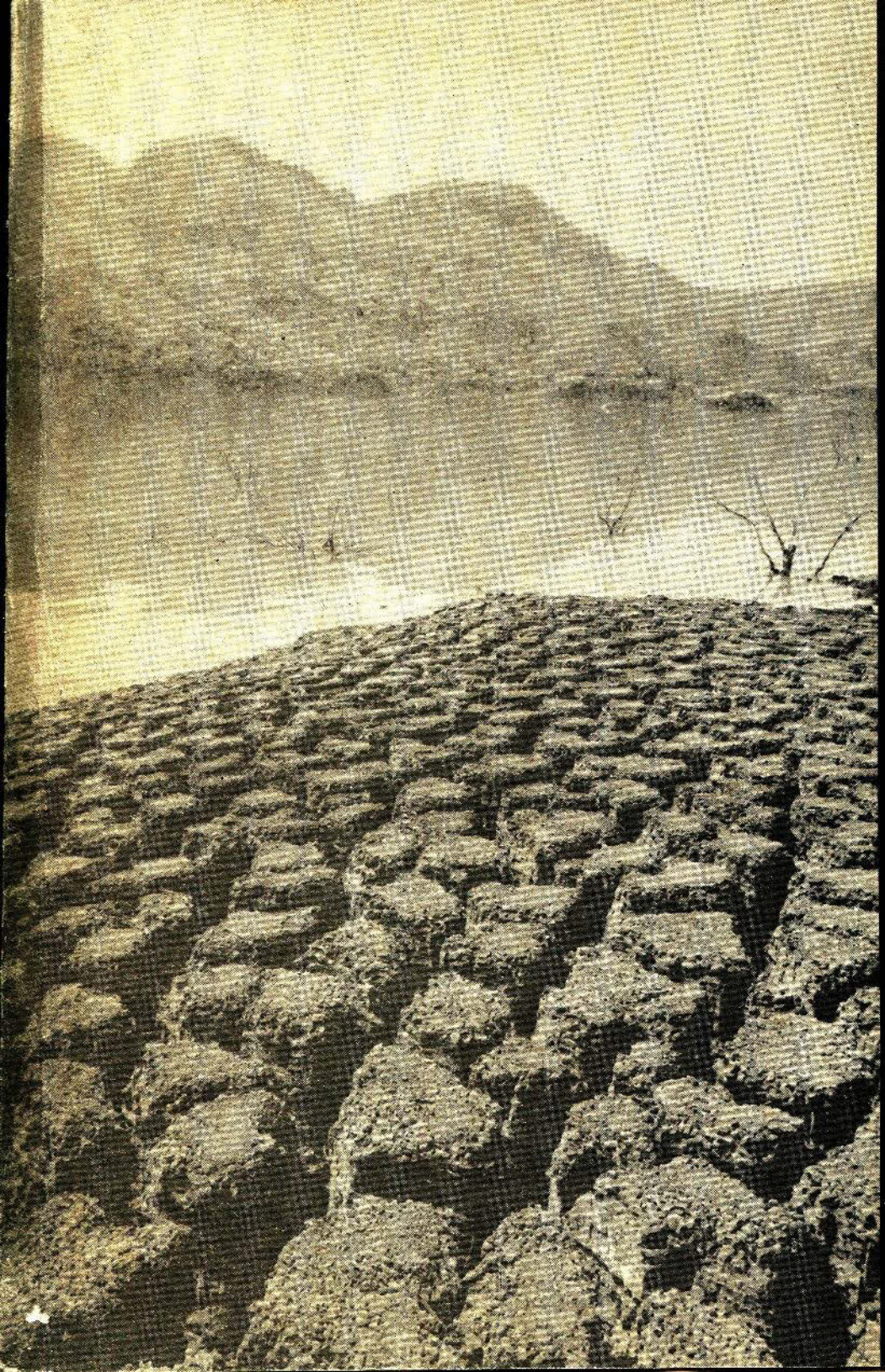

टिकाऊ खुशहाली की ओर

सुहास परांजपे
के.जे. जॉय

एकलव्य का प्रकाशन

टिकाऊ खुशहाली की ओर

सरदार सरोवर परियोजना की वैकल्पिक बनावट

सुहास परांजपे और के.जे.जॉय

लेखक : सुहास परांजपे और केजेजॉय
अनुवाद : डॉ. सुशील जोशी
प्रथम संस्करण : जनवरी 1996
एक हज़ार प्रतियाँ

मूल्य : रु. 30.00 (रु. तीस केवल)

इस पुस्तक की सामग्री का किसी भी रूप में उपयोग किया जा सकता है। स्रोत का उल्लेख करें तो अच्छा लगेगा।

इस पुस्तक के चित्र गांधी शान्ति प्रतिष्ठान की पुस्तकों - देश का पर्यावरण, हमारा पर्यावरण, तालाब, राजस्थान की रजत बून्दें से लिए गए हैं।

चित्रांकन : दिलीप चिंचालकर, इन्दौर

आवरण : सरदार सरोवर बांध की दीवार बनने से बांध के पीछे गाद भरने की शुरुआत।
छायाचित्र - रजनीकान्त यादव, जबलपुर

पिछला आवरण : सरदार सरोवर बांध से प्रभावित हुए मणिबेली, महाराष्ट्र के लोग।
छायाचित्र - जॉर्ग बाथलिंग, हैम्बर्ग, जर्मनी

प्रकाशक :
एकलव्य
ई-1/25, अरेरा कालोनी
भोपाल, म.प्र.462 016
फोन : 563380

मुद्रक :
आदर्श प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
4, प्रेस काम्प्लेक्स, एम.पी.नगर,
भोपाल, म.प्र.462 011
फोन : 555442

प्राक्कथन

के.आर. दाते के मूल संक्षिप्त सुझावों के आधार पर सुहास परांजपे और के.जे. जॉय ने सरदार सरोवर परियोजना के एक विस्तृत विकल्प की रूपरेखा तैयार की है। पिछले कुछ वर्षों में सरदार सरोवर परियोजना तथा आम तौर पर नर्मदा घाटी विकास परियोजना विवादों के दायरे में रही है। खासकर सरदार सरोवर परियोजना पर नर्मदा बचाओ आंदोलन ने सशक्त व कारगर मुद्दे उठाए हैं तथा प्रतिरोध विकसित किया है। इसी आंदोलन का परिणाम है कि इस परियोजना का पूरा मामला सार्वजनिक सरोकार का विषय बना तथा इसके नियोजन व क्रियान्वयन पर खुली बहस शुरू हुई। सुहास परांजये तथा के.जे. जॉय द्वारा वैकल्पिक अवधारणा प्रस्तुत किए जाने से इस बहस में नए आयाम जुड़े हैं।

वर्तमान विकास मॉडल को लेकर समता व टिकाऊपन (equity and sustainability) के गम्भीर प्रश्न हर तरफ से उठ रहे हैं। मगर आम तौर पर ये प्रश्न एक सतही वैचारिक स्तर पर ही रह जाते हैं। यहां प्रस्तुत विकल्प इन प्रश्नों को एक ठोस धरातल पर उतारता है। सिंचाई व ऊर्जा जैसे महत्वपूर्ण मामलों में समता व टिकाऊपन के सिद्धांतों को लागू करता यह वैकल्पिक स्वरूप परियोजना के नियोजकों व क्रियान्वयन कर्त्ताओं से ज़्यादा जन-संगठनों व जन-आंदोलनों के प्रत्युत्तर की मांग करता है।

विकल्प का एक अहम पक्ष यह भी है कि इसमें उस व्यवधान को दूर करने की संभावना है जो खास तौर से सरदार सरोवर परियोजना को लेकर उत्पन्न हो गया है। इस सीमित उद्देश्य की पूर्ति हेतु एक व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत हुआ है।

इसे प्रकाशित करने का उद्देश्य यही है कि जो खुली बहस शुरू हुई है उसमें नए पहलू जुड़ें, सफाई हो, पैनापन आए ताकि मौजूदा विनाशमूलक विकास को ज़्यादा कारगर चुनौती दी जा सके।

जनवरी, 1996

एकलव्य समूह

विषय सूची

भूमिका		1
खण्ड 1 :	पानी के संग्रह व परिवहन की वैकल्पिक योजना	11
खण्ड 2 :	पानी का समता मूलक व टिकाऊ इस्तेमाल	43
खण्ड 3 :	ऊर्जा में आत्म निर्भरता और टिकाऊ समृद्धि	87
निष्कर्ष		109

भूमिका

यहां जो विकल्प हम प्रस्तुत कर रहे हैं वह दरअसल के.आर. दाते के उस वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य पर आधारित है जो उन्होंने समीक्षा दल के सम्मुख रखा था। इसे हमने श्रमिक मुक्ति दल व उससे सहानुभूति रखने वालों के आग्रह पर तैयार किया है। हम के.आर. दाते के साथ मिलकर पिछले कई वर्षों से जन-संगठनों व गैर सरकारी संगठनों के साथ मिलकर व उनकी सहभागिता से ज़मीन व पानी से सम्बंधित नीतिगत मुद्दों पर काम करते रहे हैं। बहरहाल अपने प्रस्तुतीकरण में दाते ने सरदार सरोवर परियोजना (स. स. प.) की पुनर्रचना पर मात्र उदाहरणार्थ कुछ टिप्पणियां पेश की थीं। यहां प्रस्तुत विकल्प को तैयार करते हुए हमने काफी व्यापक दायरा टटोला है और एक समग्र रूपरेखा तैयार करने की कोशिश की है। यहां प्रस्तुत विकल्प की सारी खामियों व बारीकियों की ज़िम्मेदारी हमारी है। इस पुस्तिका में सरदार सरोवर परियोजना (स. स. प.) की वैकल्पिक पुनर्रचना का प्रस्ताव संक्षेप में वर्णित है। इस मुद्दे पर जो असंवाद की स्थिति बन गई है उसे तोड़ने के लिए ही यह विकल्प सामने रखा जा रहा है। नर्मदा बचाओ आंदोलन के नेतृत्व में

परियोजना के डूब क्षेत्र के आदिवासियों का जो संघर्ष चल रहा है उसने इस परियोजना की प्रकृति में निहित कई मुद्दों को उजागर किया है। ये मुद्दे विकास प्रक्रिया के टिकाऊपन यानी sustainability, समता तथा विस्थापन की मानवीय लागत से सम्बंधित हैं। आज इस तरह की पर्याप्त जानकारी मौजूद है जो मांग करती है कि टिकाऊपन, समता व मानवीय कीमत के लिहाज़ से स.स.प. तथा अन्य नर्मदा परियोजनाओं पर पुनर्विचार की ज़रूरत है। अत: हम स.स.प. की आलोचना का बीड़ा नहीं उठाएंगे।

समय-समय पर स.स.प. के कई विकल्प सुझाए गए हैं। इन्हें दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। एक किस्म के विकल्प वे हैं जिनमें स.स.प. जैसे किसी बांध की आवश्यकता को नामंज़ूर करते हुए गुजरात के लिए जल विकास की ऐसी योजना प्रस्तुत की गई है जिसमें गुजरात के स्थानीय वॉटर शेड अथवा नदी घाटियों के विकास की बात कही गई है। इनमें नर्मदा का पानी देने की बात ही नहीं आती। दूसरे किस्म के विकल्प वे हैं जिनमें बांध की ऊंचाई घटाने की बात कही जाती है तथा बताया जाता है कि इसकी वजह से डूब में जो कमी आएगी वह गुजरात के लाभों में होने वाली कमी की पूर्ति कर देगी।

हालांकि इन दोनों किस्मों का अपना महत्व है किन्तु ये या तो गुजरात को नर्मदा का पानी बिलकुल न देने या उसमें कमी करने पर आधारित हैं या इनमें परियोजना से उत्पादित बिजली की मात्रा में कमी आती है।

इस वजह से गुजरात में यह मत बन गया है कि ये विकल्प गुजरात के हितों के साथ न्याय नहीं करते। यह मत दलीय विभाजन से आगे जाता है। लिहाज़ा जब भी सरदार सरोवर परियोजना की आलोचना होती है, तो यह जनमत परियोजना के समर्थन में खड़ा हो जाता है, यद्यपि कई लोग डूब क्षेत्र के आदिवासियों की तकलीफों से हमदर्दी रखते हैं, पानी के समतामूलक व टिकाऊ इस्तेमाल में यकीन करते हैं, तथा स.स.प. के मौजूदा स्वरूप से असंतुष्ट हैं क्योंकि मौजूदा स.स.प. गुजरात के उन इलाकों के साथ न्याय नहीं करता जिन्हें बाहरी पानी की अधिकतम ज़रूरत है। अत: एक तरफ 'बांध नहीं' वाले हैं तथा दूसरी तरफ 'स.स.प. में कोई परिवर्तन नहीं' वाले हैं। इन दो के बीच स्पष्ट ध्रुवीकरण हो गया है तथा संवादहीनता की स्थिति निर्मित हो गई है।

पहले किस्म के विकल्पों में बड़े जल स्रोतों तथा बाहरी पानी के महत्व को बहुत कम करके आंका गया है। परन्तु इन विकल्पों ने एक महत्वपूर्ण बुनियादी सवाल यह उठाया है कि किसी भी क्षेत्र के लिए एक इको-संसाधन योजना होनी चाहिए। यहां प्रस्तुत विकल्प में इस तरह की इको-संसाधन विकास योजना पर गौर नहीं किया गया है। प्रस्तुत विकल्प का उद्देश्य यह है कि स.स.प. की पुनर्रचना इस ढंग से की जाए कि वह इस तरह की इको-संसाधन विकास योजना में उपयुक्त भूमिका निभाने के काबिल हो जाए। हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि यहां प्रस्तुत विकल्प इस तरह की योजना का स्थान नहीं ले सकता। परन्तु वास्तव में इस विकल्प का पूरा महत्व इस तरह की योजना के सन्दर्भ में ही साकार होगा।

ऊंचाई घटाने के विभिन्न प्रस्ताव इस बात को रेखांकित करते हैं कि मूल स.स.प. में विस्थापन को न्यूनतम रखने की संभावना पर पर्याप्त सोच-विचार नहीं किया गया था। हाल ही में मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री ने प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर स.स.प. बांध की ऊंचाई में थोड़ी-सी कमी करने का अनुरोध किया है। मुख्यमंत्री ने बांध की ऊंचाई (पूर्ण जलाशय स्तर) 455 फुट (138.7 मीटर) से घटाकर 436 फुट (132.9 मीटर) करने का प्रस्ताव दिया है। इस घटी हुई ऊंचाई पर गुजरात के पानी के हिस्से में कोई कमी नहीं आएगी और डूब के क्षेत्र में उल्लेखनीय कमी आएगी। यह प्रस्ताव देते हुए मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री ने एक तरह से स्वीकार किया है कि डूब व विस्थापन में कमी लाने के लिए विद्युत उत्पादन की कुर्बानी दी जा सकती है।

विनोद रायना ने हाल ही में नर्मदा जल विवाद न्यायाधिकरण के 1979 के फैसले का विश्लेषण करके बताया है कि न्यायाधिकरण द्वारा अपनाई गई पद्धति के ही तहत यदि ताज़ा उपलब्ध आंकड़ों से आकलन किया जाए, तो बांध की ऊंचाई (पूर्ण जलाशय स्तर) 400 फुट से कम रखी जा सकती है। इससे गुजरात के पानी के हिस्से पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा (विनोद रायना, सरदार सरोवर: केस फॉर लोअरिंग डैम हाइट, इकॉनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, अप्रैल 2, 1994)। अलबत्ता यहां यह कहना ज़रूरी है कि बांध की ऊंचाई घटाने से डूब व विस्थापन में कमी तो अवश्य आती है मगर इससे पानी के समतामूलक वितरण या परियोजना को पर्यावरण की दृष्टि से निभने योग्य बनाने में कोई मदद नहीं मिलती।

यहां प्रस्तुत विकल्प कई मायनों में उपरोक्त दोनों किस्म के विकल्पों से भिन्न है। मगर एक बात में हम उनसे सहमत हैं कि उन्होंने जो मुद्दे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उठाए हैं उन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता। कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे ये हैं: किसी भी बड़ी विकास परियोजना को एक समग्र इको-संसाधन विकास योजना के ताने-बाने में रखकर ही देखा जाना चाहिए, जीवन पर प्रभाव डालने वाली परियोजनाओं के बारे में सही व समग्र जानकारी पाने का लोगों का अधिकार, पानी के समतामूलक विकास और परियोजना की पर्यावरणीय व मानवीय लागत पर समुचित विचार की ज़रूरत, परियोजना से प्रभावित लोगों का अधिकार मात्र मुआवज़ा पाने तक सीमित नहीं है बल्कि उन्हें परियोजना की डिज़ाइन व प्रकृति पर सवाल खड़े करने का भी हक है।

यहां प्रस्तुत विकल्प में पानी का टिकाऊ और समतामूलक इस्तेमाल सुनिश्चित करने तथा डूब में कमी लाने पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। ऐसा करते हुए यह भी ध्यान रखा गया है कि परियोजना में शामिल तीन प्रमुख राज्यों को पानी व ऊर्जा के रूप में मिलने वाले लाभों में कोई कमी न हो। पानी व ऊर्जा के क्षेत्र में इस वक्त हावी परिप्रेक्ष्य के तहत ऐसा करना असंभव-सा है। परन्तु आज हमारे पास तकनीकी व सामाजिक अनुभवों का बढ़ता भण्डार मौजूद है जिसके आधार पर ऐसा कर पाना संभव है।

छोटे-बड़े की बहस से आगे

वर्तमान संवादहीनता के कारण कई मुद्दे उपेक्षित रह गए हैं। यह बात अनदेखी हो रही है कि बड़ी परियोजनाओं को इस ढंग से बनाना तकनीकी रूप से संभव है कि उससे टिकाऊपन व समतामूलक वितरण में मदद मिले, संसाधनों का उपयोग स्थानीय स्रोतों व प्रबन्धन के तहत हो सके तथा मानवीय व पर्यावरणीय लागत न्यूनतम रहे। इस संभावना को न पहचान पाने की वजह से स.स.प. की बहस में एक शून्य पैदा हो गया है।

हम यह भी महसूस करते हैं कि छोटे बनाम बड़े प्रोजेक्ट की बहस में अपने आप में कोई सार नहीं है। गैर टिकाऊ व विषमतापूर्ण पानी उपयोग वाली छोटी परियोजना किसी बड़ी परियोजना से बेहतर नहीं कही जा सकती। देश में ऐसे अनगिनत उदाहरण भी मौजूद हैं। हमें वर्तमान छोटी बनाम बड़ी की रूढ़ बहस से आगे बढ़ना होगा तथा एक नवीन, नवाचारी, एकीकृत रवैया विकसित करना व अपनाना होगा, तभी हम सरदार सरोवर जैसी परियोजनाओं का विकल्प तैयार करने में सक्षम हो पाएंगे।

इस सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव एस.एस. नाडकर्णी, विलास राव सालुंके, के.आर. दाते तथा सी.एम. पंडित ने दो वर्ष पूर्व दिया था। यह मूलत: ऊंचाई घटाने का प्रस्ताव था मगर इसकी सफलता का पूर दारोमदार इस बात पर था कि मध्यप्रदेश में प्रस्तावित दो बांध बनकर तैयार हों। वर्तमान हालातों में वः संभव नज़र नहीं आता।

यहां प्रस्तुत विकल्प नाडकर्णी प्रस्ताव की दिशा पर आधारित है। इसमें के.आर. दाते द्वारा पुनर्विचार समिति के समक्ष दिए गए प्रस्तुतीकरण को भी आधार बनाया गया है। इस विकल्प का मूल मकसद यह है कि पानी का टिकाऊ व समतामूलक इस्तेमाल हो तथा डूब क्षेत्र में काफी कमी आए। विकल्प में कोशिश यह की गई है कि नर्मदा पानी की प्रयुक्त मात्रा में कमी किए बगैर पानी व बिजली सम्बंधी लाभों में उल्लेखनीय वृद्धि हो।

लागत के अनुमान

स.स.प. के समर्थकों और आलोचकों द्वारा दिए जाने वाले आंकड़ों में काफी अन्तर्विरोध व खाइयां हैं। सरकारी संस्थाओं द्वारा प्रदत्त जानकारी व आंकड़ों में भी परस्पर सहमति नहीं है। ऐसी परिस्थिति में हमें अपनी गणनाएं करनी पड़ी हैं जिन्हें हमने स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है ताकि आगे चलकर ज़्यादा विश्वसनीय आंकड़े और अनुमान जोड़े जा सकें।

गुजरात सरकार के 1992-93 बजट के मुताबिक स.स.प. की लागत 9,400 करोड़ रुपए है। यह कथित रूप से बुनियादी लागत मात्र है। विश्व बैंक ने 1985 की कीमतों के आधार पर बुनियादी लागत ही 13,640 करोड़ रुपए आंकी है। राहल राम की पुस्तक 'सरदार सरोवर : दावे और सच्चाई' में प्रस्तुत गणना के अनुसार 1992 की

कीमतों पर परियोजना की कुल लागत 20,000 करोड़ रुपए से ज़्यादा होगी। अल्वारेज़ और बिल्लोरे ने अपनी पुस्तक 'डैमिंग दी नर्मदा' में लागत का आंकड़ा 13,900 करोड़ रुपए आंका है।

तुलना के लिहाज़ से हम कुल लागत 13,000 करोड़ रुपए मानकर चलेंगे हालांकि वास्तविक आंकड़ा कहीं ज़्यादा भी हो सकता है। विभिन्न मदों में इसका बंटवारा निम्नानुसार है:

(1)	बांध का निर्माण	1,500 करोड़ रुपए
(2)	नहर व कमान क्षेत्र विकास	7,500 करोड़ रुपए
(3)	बिजली उत्पादन की लागत	3,000 करोड़ रुपए
(4)	भूअर्जन, पुनर्वास, वन विकास आदि	1,000 करोड़ रुपए

विभिन्न अनुमानों में भूअर्जन, पुनर्वास आदि की लागत अलग से दी गई है। बांध की लागत हमने गुजरात सरकार द्वारा दिए गए आंकड़ों के आधार पर निकाली है। बिजली उत्पादन की लागत (पम्प जनित जलाशय संयंत्र के हिस्से के रूप में) इस आधार पर निकाली गई है कि इस इलाके के लिए वैकल्पिक न्यायोचित व्यय कितना होगा— 25,000 रुपए/किलोवॉट (25% लोड फेक्टर मानकर)। शेष खर्च का भार नहर व कमान क्षेत्र विकास पर डाला गया है।

विकल्प से क्या उपलब्ध होने की उम्मीद है?

प्रस्तुत विकल्प से उम्मीद है कि वह निम्नांकित विरोधाभासी दिखने वाले लक्ष्यों की पूर्ति करेगा:

(1) विस्थापनः ख़ासकर समूचे गांवों के विस्थापन को इतना कम करना कि विस्थापितों का पुनर्वास उसी इलाके में, उन अपने सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में हो सके।

(2) उपरोक्त लक्ष्य हासिल करते हुए सुनिश्चित करना कि ट्रायबूनल द्वारा आवंटित गुजरात का हिस्सा न घटे तथा यह प्राथमिक रूप से कच्छ, सौराष्ट्र व उत्तर गुजरात को मिले।

(3) इस पानी की उपलब्धता को इस शर्त के साथ जोड़ना कि इसका उपयोग पुनरुत्पादक व समतामूलक (रीजनरेटिव-सस्टेनेबल) ढंग से किया जाए। इससे टिकाऊ समृद्धि का रास्ता खुलेगा।

(4) यह सब करते हुए कोशिश करना कि जितना निर्माण हो चुका है या जितना खर्च किया जा चुका है उसे वैकल्पिक ढांचे में इस्तेमाल किया जा सके ताकि बरबादी कम से कम हो। हम यह दिखाने की कोशिश करेंगे कि 13,000 करोड़ की सीमा में यह संभव है कि –

(क) पूर्ण जलाशय स्तर 107 मीटर रखा जाए, जिससे डूब में 70 प्रतिशत तथा विस्थापन में 90 प्रतिशत की कमी होगी।

(ख) गुजरात को आवंटित 90 लाख एकड़ फुट पानी का उपयोग कर लिया जाए।

खण्ड 1

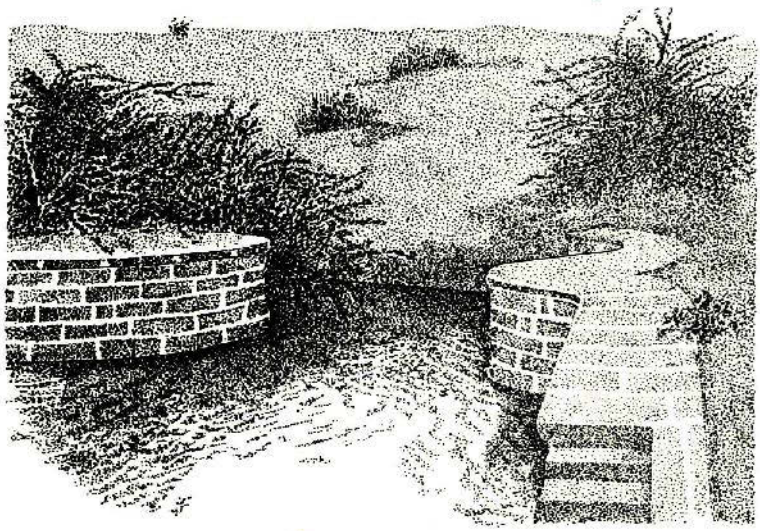

पानी के संग्रह व परिवहन की वैकल्पिक योजना

संक्षेप में वैकल्पिक पानी संग्रह व परिवहन तंत्र को यों बयान किया जा सकता है : हमारे द्वारा प्रस्तुत विकल्प में बांध के पीछे पानी भरने की ज़रूरत बहुत कम रह जाती है। सरदार सरोवर पर बांध की ऊंचाई 107 मीटर पूर्ण जलाशय स्तर के अनुरूप रहेगी। इसमें मानसून पश्चात् पानी का स्तर 90 मीटर माना गया है (वर्तमान पूर्ण जलाशय स्तर 140 मीटर है)। नर्मदा में से पानी को दो-तीन स्थानों से मोड़ा जा सकता है। सरदार सरोवर की मुख्य नहर से, भरुच के आगे बराजों की एक शृंखला बनाकर पानी को सीधे सौराष्ट्र ले जाया जाएगा। सरदार सरोवर मुख्य नहर के अंतिम छोर से बराज शृंखला के ज़रिये कच्छ तक पानी पहुंचाया जाएगा।

नहरें मूलतः पोषक नहरें (फीडर नहरें) होंगी जो स्थानीय सतही जलाशयों तथा भूजल में पानी भरेंगी। वितरण तंत्र नहरों के इर्द-गिर्द न बनाकर, इन स्थानीय सतही जलाशयों व भूजल भण्डारों के इर्द-गिर्द बनाया जाएगा। मतलब नर्मदा का पानी इन बिखरे हुए, स्थानीय सतही व भूजल भण्डारों में संग्रहित किया जाएगा। केन्द्रीय तंत्र की भूमिका मात्र यह होगी कि बाहरी पानी को मोड़कर इन स्थानीय भण्डारों तक पहुंचा दे।

स्थानीय भण्डारों में सारा पानी अधिकतम छः महीने की अवधि में पहुंचा दिया जाएगा। अधिकतर पानी को सरदार सरोवर मुख्य नहर में भेजा जाएगा। कुछ पानी भरुच व संभवतः गरुड़ेश्वर से भी मोड़ा जाएगा। गरुड़ेश्वर पर सरकार ने यों भी एक बराज की योजना बनाई थी जिसका उपयोग पम्पजनित भण्डारण के लिए किया जाना प्रस्तावित था। भरुच से आगे बराजों की एक शृंखला निर्मित की जाएगी। इसके ज़रिये पानी को सौराष्ट्र फीडर नहर तंत्र में भेजा जाएगा। सौराष्ट्र फीडर नहर तंत्र की मुख्य नहर सौराष्ट्र के आसपास एक परिक्रमा के रूप में होगी। इसकी ऊंचाई लगभग 50 मीटर होगी। इसी तरह से कच्छ को पानी पहुंचाने के लिए सरदार सरोवर मुख्य नहर के अंतिम छोर से या गरुड़ेश्वर से शुरू होने वाली फीडर नहर से पानी उठाकर कच्छ फीडर नहर में डाला जाएगा। कच्छ फीडर नहर करीब 70 मीटर की ऊंचाई पर होगी। मुख्य फीडर नहरों का एक लगभग मार्ग नक्शा 1 में दिखाया गया है।

गुजरात के सूखा प्रभावित क्षेत्र, कच्छ, सौराष्ट्र व उत्तर गुजरात को वितरण कार्यक्रम में प्राथमिकता दी जाएगी। वास्तव में बड़ी परियोजनाओं से पानी वितरण का कार्यक्रम निर्धारित करते समय हमें 'अंतिम छोर से शुरू' करने का तरीका अपनाना चाहिए। अन्यथा होता यह है कि निकट के क्षेत्र अधिकतर पानी का उपयोग कर लेते हैं और अन्तिम छोर पर पानी बहुत कम पहुंच पाता है।

यहां आते-आते पाठकों के दिमाग में कई प्रश्न कौंधने लगे होंगे। मसलन, क्या इस तरह से करने पर गुजरात अपने हिस्से के पूरे पानी का उपयोग कर पाएगा? सरदार सरोवर बांध की ऊंचाई कितनी होगी तथा इसका निर्धारण कैसे किया जाएगा? क्या पर्याप्त स्थानीय भण्डारण क्षमता उपलब्ध है? लागत तो बहुत ज़्यादा नहीं होगी? बराजों, पानी को पम्प करने आदि की लागत क्या होगी? बिजली उत्पादन पर क्या असर होगा, वगैरह। चूंकि हमारा वैकल्पिक प्रस्ताव कई मायनों में रूढ़िगत तौर-तरीकों से भिन्न है इसलिए नीचे हम विभिन्न मुद्दों की विस्तार में चर्चा करेंगे।

पानी का क्षेत्रवार बंटवारा

जैसा कि हमने 'भूमिका' में कहा था हम यह मानकर चल रहे हैं कि नर्मदा पानी में गुजरात का हिस्सा 90 लाख

एकड़ फुट है (जैसा ट्रायबूनल ने तय किया था)। परन्तु गुजरात के विभिन्न हिस्सों में इस पानी का अन्दरुनी वितरण हमने काफी अलग ढंग से किया है। यह वितरण तालिका 1.1 में दिया गया है।

तालिका 1.1

गुजरात के विभिन्न क्षेत्रों को पानी का वितरण

क्षेत्र	विकल्प में पानी का आवंटन (लाख एकड़ फुट)	नर्मदा के ग्रामीण उपयोग में प्रतिशत	
		मूल योजना	विकल्प
सौराष्ट्र (भरुच से मोड़कर)	24	22%	33%
उत्तर गुजरात (सरदार सरोवर मुख्य नहर से)	24	17%	33%
कच्छ (सरदार सरोवर मुख्य नहर तथा अंतिम छोर के बराज से)	8	2%	11%
अन्य क्षेत्र (मुख्य नहर से)	16	59%	22%
शहरी व औद्योगिक उपयोग	18	—	—
कुल	90	—	—

यह वितरण विभिन्न क्षेत्रों की पानी की अनुमानित ज़रूरतों पर आधारित है। इसमें इलाके की बारिश की परिस्थिति, भौगोलिक बनावट तथा ग्रामीण आबादी का भी ध्यान रखा गया है। वितरण का मुख्य सिद्धांत यह है कि कम बारिश वाले इलाके को प्राथमिकता दी जाए। यह वितरण एक मोटा अनुमान ही है और जब ज़्यादा गहन जांच की जाएगी तब बदल भी सकता है।

स्थानीय भण्डार

पहले हम एक मोटा-मोटा चित्र प्रस्तुत करेंगे कि कैसे सतही व भूजल दोनों तरह के स्थानीय जल भण्डारों को एक केन्द्रीय तंत्र से जोड़ा जा सकता है। इस तरह के जुड़ाव की व्यावहारिकता की चर्चा हम बाद में उठाएंगे।

ज़रा एक स्थानीय परिस्थिति की कल्पना कीजिए। यहां कई सारे सतही भण्डार होंगे जिनमें से नालियों से होकर पानी खेतों तक पहुंचता होगा। यहीं पर कुएं भी होंगे जो भूजल के दोहन के काम आते हैं। सतही और भूमिगत जल के बीच कोई चीन की दीवार तो है नहीं। सतही पानी का रिसन होकर भूमिगत स्रोतों का भराव होता होगा। इसी प्रकार से नहरों तथा खेत की नालियों तथा खेत में से होने वाले रिसन से भी भूमिगत पानी में वृद्धि होती है। इस पानी को कुएं से खींचकर वापस सतह पर लाया जाता है तथा उपयोग किया जाता है। यह ब्यौरा मात्र इस बिन्दु को उभारने के लिए दिया गया था कि वास्तव में सतही पानी और भूमिगत पानी एक एकीकृत तंत्र के अंग हैं और इनका प्रबन्ध एक तंत्र के रूप में ही किया जाना चाहिए।

परन्तु रूढ़िगत कमान क्षेत्र प्रबन्धन में नहर तंत्र को स्वतंत्र रूप से देखा जाता है। जब इसमें उपयोगकर्त्ताओं की भागीदारी की बात होती है तो उसे भी नहर तंत्र तक ही सीमित रखा जाता है। नहर तंत्र पर तो कठोर नियंत्रण रखा जाता है मगर भूजल को छोड़ दिया जाता है - अनियंत्रित व अनियोजित इस्तेमाल के लिए। यह तरीका इस नज़रिये पर आधारित है कि मुख्य तंत्र का काम यह है कि मात्र नहरों के ज़रिये उपयोगकर्त्ताओं को व्यक्तिगत स्तर पर पानी उपलब्ध करा दे। आमतौर पर भूमिगत पानी पर ध्यान नहीं दिया जाता क्योंकि भूजल दोहन को लेकर कोई स्पष्ट नीति ही नहीं है। वस्तुस्थिति यह है कि भूमिगत जल भण्डार ज़्यादा आसानी से व कम लागत पर निर्मित किए जा सकते हैं तथा इनमें पानी भाप बनकर उड़ जाने का खतरा भी नहीं रहता।

हमारे विकल्प में मुख्य तंत्र से पानी निजी उपयोगकर्त्ताओं को न देकर स्थानीय भूमिगत-सतही जल भण्डार तंत्र को दिया जाएगा। इसके वितरण का काम उपयोगकर्त्ताओं द्वारा इसके सामूहिक प्रबन्धन पर आधारित होगा। इसमें सतही व भूमिगत दोनों तरह के जल संसाधन तथा उपयोगकर्त्ताओं द्वारा इन दोनों के नियोजित उपयोग का ध्यान रखा गया है। अर्थात पानी प्रदाय तंत्र में कुओं और सतही जल भण्डारों को एकीकृत रूप में देखा गया है।

इसमें यह मान्यता ज़रूर है कि इस तरह के तंत्र के प्रबन्धन हेतु ज़रूरी संस्थागत व्यवस्थाएं निर्मित की जा सकती हैं। इस मुद्दे पर हम खण्ड 2 में ज़्यादा विस्तार से चर्चा करेंगे। यहां हम ज़्यादा ध्यान केन्द्रीय तंत्र पर देंगे जो स्थानीय भण्डारों तक पानी पहुंचाएगा। बहरहाल यहां इतना कहना लाज़मी है कि यदि स्थानीय तंत्र उपयुक्त ढंग से गठित किया जाए तो उसमें आनेवाले बाहरी पानी को दो तरह से संग्रहित किया जा सकता है :

(i) पानी को स्थानीय सतही जलाशयों (जैसे सिंचाई तालाबों, जलाशयों, चेक बांध, रिसन तालाब आदि) में भरा जा सकता है।

(ii) भूमिगत जल भण्डारों में भरा जा सकता है, जिसके लिए उपयुक्त रिसन स्थानों का चयन करना होगा। नालों के पेंदे या कृत्रिम रचनाएं या उपयुक्त भौगोलिक परिस्थितियों में बगैर पलस्तर वाली नहरें भी रिसन में मदद दे सकती हैं।

इस तरह की व्यवस्था होने पर, बाहरी पानी पूरे मानसून के दौरान तंत्र में पहुंचकर स्थानीय सतही व भूजल भण्डारों को भरता रहता है। लिहाज़ा मानसून के अन्त और शायद दिसम्बर के अन्त तक ये भण्डार प्रायः पूरे भरे हुए

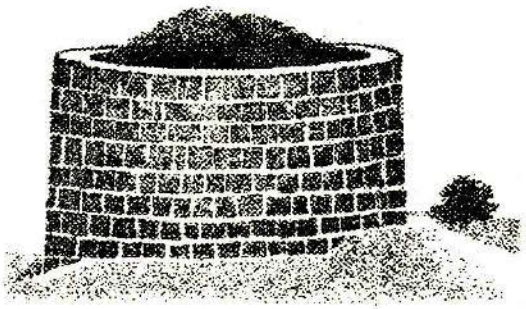

रहते हैं। अतः सतह व भूमिगत स्तर पर उपलब्ध इस भण्डारण क्षमता का उपयोग दो-तीन बार किया जा सकता है। य कुछ इस बात पर निर्भर है कि बाहरी पानी पहुंचाने का समय चक्र क्या है और पानी के उपयोग का समय चक्र व है। यदि पूरे तंत्र का उपयुक्त प्रबन्धन किया जाए तो हमें जितनी भण्डारण क्षमता चाहिए होगी, वह पानी उपयोग की वु मात्रा से कहीं कम होगी।

बड़े तंत्र और स्थानीय बफर भण्डार

जो वैकल्पिक तंत्र हम सुझा रहे हैं उसके पीछे एक ज़्यादा सामान्य दृष्टिकोण भी है। यहां हम जो सिद्ध प्रस्तुत कर रहे हैं वे सिर्फ स.स.प. के लिए ही नहीं हैं। इनका ध्यान तो सारी बड़ी परियोजनाओं में रखा जाना चाहि ये समूचे पानी व ऊर्जा क्षेत्र के सुधार के मुद्दे को छूते हैं तथा इन्हें उसी व्यापक सन्दर्भ में समझना बेहतर होगा।

स्थापित रूढ़िगत सिंचाई प्रणालियों में आमतौर पर स्थानीय तंत्र की अवहेलना की जाती है और बड़े बांधों, बड़े स्रो या बड़े प्रवाहों को स्वतंत्र, अलग-थलग, आत्मपूरित, केन्द्रीकृत प्रणाली के रूप में देखा जाता है। इन बड़े स्रोतों को इस रूप नहीं देखा जाता कि इनकी मदद से स्थानीय पानी तंत्रों को सुदृढ़ बनाया जाए, स्थिरता प्रदान की जाए और किसी इलाके अतिरिक्त पानी तभी दिया जाए जब ऐसा कर लिया गया हो तथा ऐसे सुदृढ़ीकरण के आधार पर ही दिया जाए। इस पर खण्ड 2 में विस्तार से चर्चा करेंगे। यहां इतना कहना ही ज़रूरी है कि स्थापित रूढ़िगत सोच में तो कमान क्षेत्र में स्थान बफर भण्डार निर्मित करने पर भी ध्यान नहीं दिया जाता।

इस रवैये का एक परिणाम यह होता है कि ऐसी सारी केन्द्रीकृत, बफरहीन परियोजनाओं में पानी का उपयोग बहुत अकार्यक्षम ढंग से होता है। ऐसी केन्द्रीकृत परियोजनाओं में बहुधा दो पानी चक्र के बीच 3 सप्ताह का अन्तराल होता फसल की ज़रूरत के अनुसार पानी देने की अवधारणा एक दिवास्वप्न ही रह जाती है क्योंकि पानी उपलब्ध कराने में ऐ बातों का ध्यान ही नहीं रखा जाता। जब कभी पानी मिल जाए, तब लोग अति-सिंचाई करने को एक तरह से मजबूर हो जाते क्योंकि उसके बाद तीन सप्ताह तक पानी मिलना नहीं है। इस तरह के पानी चक्र की वजह से लोग ऐसी फसलें लगाने मजबूर हो जाते हैं जो तीन सप्ताह का अन्तराल और अति-सिंचाई दोनों को सह सकें, यानी मुख्यतः धान और गन्ना।

कमान क्षेत्र के अन्दर ही अन्दर इसका जो विकल्प उभर रहा है, वह है स्थानीय बफर भण्डार निर्मित करन स्थानीय बफर भण्डार होने से यह संभव होगा कि किसानों के छोटे-छोटे समूह इनमें पानी भरकर रख सकें तथा स अन्तराल में फसल की ज़रूरत के अनुसार पानी दे सकें। इससे पानी के उपयोग की कार्यक्षमता तो बढ़ेगी ही, साथ फसलों की विविधता भी बरकरार रखी जा सकेगी। यानी बड़े बांधों के मौजूदा सिंचाई क्षेत्रों में भी स्थानीय बफर भण्ड अपरिहार्य हो गए हैं। यदि प्रणाली की कार्यक्षमता बढ़ानी है और यदि पानी की मात्रा व सिंचाई के समय का नियं किसानों के हाथों में रखना है तो सबक यह है कि ऐसे स्थानीय बफर भण्डारों के बगैर निर्मित बड़े बांधों में भी इन तत्काल ज़रूरत है।

स्थानीय भण्डारों को बड़ी प्रणालियों के अंग के बतौर देखने के प्रति बेरुखी वास्तव में एक रूढ़ मान्यता परिणाम है। मान्यता यह है कि बड़े जलाशय अपेक्षाकृत किफायती होते हैं। गहराई से जांच करने पर यह अर्द्धसत्य प्रतीत होता है। यह बात सिर्फ जलाशय की सतह के क्षेत्रफल, निर्माण के आयतन व भण्डारण लागत के सन्दर्भ में

सही है। परन्तु जलाशय तो परियोजना का मात्र एक अंग है। बड़ी परियोजनाओं के लिए वितरण तंत्र भी विशाल होता है तथा इसकी लागत काफी ज़्यादा बैठती है। इसके लिए ज़रूरी संचालन व रख-रखाव तंत्र भी काफी विशाल होता है। यदि ये सारे खर्च भी जोड़े जाएं, तो गणनाओं से हमें यकीन हो गया है कि प्रति इकाई पानी प्रदाय की लागत उतनी कम नहीं होती। इसके अलावा अब यह भी समझ में आने लगा है कि यदि इन परियोजनाओं की सेवा व कार्यक्षमता बेहतर बनानी हो और यदि पानी की मात्रा व समय का नियंत्रण किसानों के हाथों में रखना हो, तो कई सारे छोटे-छोटे स्थानीय भण्डार भी ज़रूरी होंगे। वास्तव में यदि हम इन सारे कारकों को एक समुचित प्रणाली के नियोजन में ध्यान रखें, तो हमारी गणनाओं से पता चलता है कि लागत में बहुत अन्तर नहीं पड़ता। कम से कम इसके आधार पर बड़ी परियोजनाओं को स्वयंसिद्ध सत्य तो मानना असंभव है।

जैसा कि अब तक साफ हो चुका है कि हमें छोटी परियोजनाओं के मुकाबले बड़ी परियोजना के पक्ष में या इससे विपरीत बड़ी के मुकाबले छोटी के पक्ष में कोई निहित श्रेष्ठता नज़र नहीं आती। वास्तव में ज़रूरत इस बात की है कि बड़ी व छोटी परियोजनाओं को जोड़कर एक ऐसा परिप्रेक्ष्य विकसित हो जिसके तहत हमारे जल संसाधन की हिफाज़त व विकास हो सके तथा पानी का समतामूलक व पुनरुत्पादक ढंग से उपयोग भी सुनिश्चित हो सके। हम जो विकल्प विकसित कर रहे हैं वह एक ऐसे सामान्य नज़रिये पर आधारित है जो सारी सिंचाई परियोजनाओं पर लागू किया जा सकता है। इसे संक्षेप में यों बयान किया जा सकता है :

* जब तक किसी परियोजना के परिणामों पर सार्वजनिक बहस नहीं हो जाती, और उसके पक्ष में एक आम सामाजिक सहमति नहीं बन जाती तब तक उसे चालू नहीं किया जाना चाहिए। इस आम सहमति व सार्वजनिक बहस में उन लोगों को अनिवार्य रूप से शामिल किया जाए जो प्रतिकूल रूप से प्रभावित होंगे। किसी भी परियोजना को तब तक अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जब तक कि यह सिद्ध न हो जाए कि उससे स्थानीय पानी प्रणाली समता व टिकाऊपन की कसौटी के अनुरूप पुख्ता व स्थिर होगी। इस तरह की जांच के बाद व इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर अतिरिक्त पानी मुहैया कराया जाना चाहिए।

* विद्यमान परियोजनाओं में प्राथमिकता परियोजना की पुनर्रचना तथा बेहतरीकरण को दी जानी चाहिए। इसमें स्थानीय भण्डारण को महत्व देना होगा ताकि किसान व अन्य पानी उपयोगकर्ता समूह पानी प्रणाली पर वास्तविक नियंत्रण पा सकें। प्राथमिकता इस बात की होनी चाहिए कि कार्यक्षमता बढ़े, पानी की बचत हो और बचे हुए पानी का उपयोग इन परियोजनाओं का सेवा क्षेत्र बढ़ाने में किया जाए।

स्थानीय भण्डारण क्षमता

कच्छ, सौराष्ट्र, उत्तर गुजरात तथा गुजरात के अन्य क्षेत्रों के लिए स्थानीय भण्डारों पर अलग-अलग विचार करना होगा। वैसे यहां इसके विस्तार में नहीं जाया जा सकता। मसलन भाल क्षेत्र में पानी का प्रमुख इस्तेमाल सिंचाई के लिए नहीं बल्कि flushing के लिए किया जाता है।

सवाल यह है कि क्या पर्याप्त स्थानीय भण्डार मौजूद हैं? इस मामले में पहली बात तो यह है कि सारे स्थानीय भण्डार नए सिरे से बनाने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि पहले से मौजूद अतिरिक्त भण्डारण क्षमता का उपयोग किया जा

सकता है। इसके लिए सबसे पहले यह देखते हैं कि इस क्षेत्र में कितनी और किस तरह की स्थानीय भण्डारण क्षमता पहले से मौजूद है।

सतही भण्डारण क्षमता

गुजरात में पहले से मौजूद स्थानीय भण्डारों पर गौर करें तो पता चलता है कि वहां छोटे स्तर के भण्डारों में 35 लाख एकड़ फुट भण्डारण क्षमता है। छोटे स्तर के भण्डारों से तात्पर्य 10 करोड़ घन मीटर से कम क्षमता वाली छोटी व मझोली सिंचाई परियोजनाओं से है (देखें तालिका 1.2)। हम यह मानते हैं कि इसमें से 20 लाख एकड़ फुट क्षमता का उपयोग नर्मदा पानी के भण्डारण के लिए किया जा सकेगा। चूंकि कच्छ, सौराष्ट्र व उत्तर गुजरात सूखाग्रस्त इलाके हैं इसलिए यहां के सतही भण्डार 50% विश्वसनीयता वाली वर्षा के लिहाज़ से बनाए गए हैं। मोटे तौर पर इसका अर्थ यह है कि ये भण्डार औसतन दो साल में एक बार पूरे भरेंगे। इस वजह से अधिकांश वर्षों में इन भण्डारों में भण्डारण क्षमता खाली पड़ी रहेगी।

तालिका 1.2

मौजूदा सतही जल भण्डारण क्षमता (हैक्टर-मीटर में)

	कच्छ	सौराष्ट्र	उत्तर गुजरात	शेष गुजरात	कुल (1+2+3+4)	सूखा ग्रस्त इलाका (1+2+3)
	[1]	[2]	[3]	[4]	[5]	[6]
लघु सिंचाई परियोजनाएं	20,400	36,480	13,500	35,280	105,660	70,380
चेक डैम –	16,620	960	8,460	26,040	17,580	
रिसन तालाब	300	15,480	1,920	2,040	19,740	17,700
छोटी मझोली परियोजनाएं *	30,000	131,700	27,100	72,500	261,300	188,800
कुल	50,700	200,280	43,480	118,280	412,740	294,460
लाख एकड़ फुट	4.1	16.0	3.5	9.5	33.1	23.6

* क्षमता 10 करोड़ घन मीटर से कम।

स्रोत : गुजरात सरकार, 1989

आजकल यह भी संभव हो गया है कि मौजूदा जलाशयों में तटबन्ध बनाकर, डूब क्षेत्र में कोई वृद्धि किए बगैर उनकी क्षमता बढ़ाई जा सकती है। इस पर साधारणतः ध्यान नहीं दिया जाता क्योंकि वर्तमान परिस्थिति में, जबकि इतनी

क्षमता हा पूरी तरह भर नहीं पाती, तब क्षमता बढ़ाने में कोई तुक नहीं है। परन्तु जब बाहर से पानी मिलने की संभावना हो, तो मौजूदा क्षमता में वृद्धि करना उपयोगी साबित हो सकता है। हमारा अनुमान है कि मौजूदा क्षमता में 5 लाख एकड़ फुट की वृद्धि की जा सकती है।

इसके अलावा हम यह मानकर चल रहे हैं कि 10 लाख एकड़ फुट की नई क्षमता विकसित की जाएगी। इसकी लागत परियोजना लागत में जोड़ दी जाएगी।

मौजूदा भण्डारण क्षमता का एक और महत्वपूर्ण उपयोग यह हो सकता है कि खाली हो जाने पर नर्मदा के पानी से इनका पुनर्भरण हो सकता है। ऊंचे स्थानों पर इस तरह की पर्याप्त भण्डारण क्षमता विद्यमान है (एक उदाहरण कड़ाना का है)। यह भण्डारण क्षमता साबरमती, मही जैसी नदियों में मौजूद है। वैसे तो ये भण्डार काफी ऊंचाई पर स्थित हैं मगर फिलहाल इनका अधिकांश पानी डाउनस्ट्रीम इलाकों को ही सिंचाई के लिए दिया जाता है। इसमें से अधिकांश इलाका स.स.प. की मुख्य नहर से निचले स्तर पर है। अतः ऐसा किया जा सकता है कि इन डाउनस्ट्रीम इलाकों को स.स.प. से नर्मदा का पानी दे दिया जाए तथा इस प्रकार जो पानी की बचत होगी उसे ज़्यादा ऊंचाई पर स्थित इलाकों को मुहैया कराया जाए। यदि हम इस पर अमल करें तो स्थानीय भण्डार विकसित करने पर अतिरिक्त खर्च नहीं करना पड़ेगा। हमारे ख्याल से यह संभव होगा कि मध्य गुजरात को आवंटित 16 लाख एकड़ फुट तथा उत्तर गुजरात को आवंटित 24 लाख एकड़ फुट पानी के बड़े हिस्से को इस तरह से क्षतिपूर्ति के लिए इस्तेमाल करके उतना ही पानी अपस्ट्रीम इलाकों के लिए मुहैया करा दिया जाए। एक मोटा अनुमान है कि यह लगभग 10 से 15 लाख एकड़ फुट तक होगा।

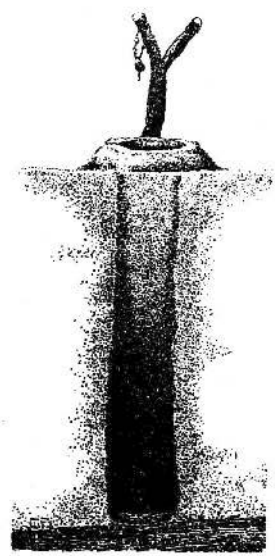

यानी कुल सतही भण्डारण क्षमता निम्नानुसार होगीः 20 लाख एकड़ फुट मौजूदा क्षमता, 5 लाख एकड़ फुट मौजूदा क्षमता में वृद्धि, 10 लाख एकड़ फुट नई क्षमता तथा 10 से 15 लाख एकड़ फुट क्षतिपूर्ति से बचा पानी। यानी कुल क्षमता 45 से 50 लाख एकड़ फुट हो जाएगी।

भूजल भण्डार

आइए अब सतह के नीचे यानी भूजल भण्डारों पर विचार करें। आमतौर पर भूजल भण्डारों पर ध्यान नहीं दिया जाता क्योंकि भूजल के दोहन व वितरण को लेकर कोई स्पष्ट नीति नहीं है। वैसे भूजल भण्डार का एक लाभ यह है कि, सतही भण्डारों के विपरीत, इनमें वाष्पीकरण से नुकसान नहीं होता तथा भूजल भण्डार निर्मित करना ज़्यादा आसान और सस्ता काम है।

दरअसल इसमें दो मुद्दे सामने आते हैं।

गुजरात के अधिकांश इलाक़ों में भूजल की अति-निकासी हो रही है। अतः भूजल का पुनर्भरण व इसका टिकाऊ उपयोग सुनिश्चित करना एक अर्जेंट ज़रूरत है। इस खण्ड में हम नर्मदा पानी की मदद से भूजल पुनर्भरण की संभावनाओं पर विचार करेंगे। दूसरा ज़रूरी मुद्दा भूजल के टिकाऊ उपयोग से सम्बंधित है। उसकी चर्चा हम खण्ड 2 में करेंगे।

गुजरात का कुल भूजल 120 से 160 लाख एकड़ फुट के बीच आंका गया है। भूजल भण्डारण क्षमता इससे कहीं ज़्यादा है। गुजरात में भूजल भण्डारण क्षमता का कोई अभाव नहीं है। वास्तव में गुजरात के सूखाग्रस्त इलाकों में भूजल भण्डारण क्षमता सर्वाधिक है। डॉ. पी.पी. पटेल के अनुसार, "कच्छ व उत्तर गुजरात के कई हिस्सों में ऐसी अनुकूल भौगोलिक परिस्थिति है कि यहां कम औसत वर्षा के बावजूद भूजल के समृद्ध भण्डार की क्षमता मौजूद है। यह सही है कि ये भण्डार अति-निकासी के चलते चुक गए हैं। सौराष्ट्र तट की रिसनमय भौगोलिक संरचना की बदौलत वहां मीठे पानी के समृद्ध भूजल भण्डार हैं। यहां भी अति-दोहन के फलस्वरूप समुद्री पानी की घुसपैठ के चलते भूजल प्रदूषित हो गया है।"

डॉ. पटेल यह भी बताते हैं कि सतही व भूजल संसाधनों को अलग-अलग एक-दूसरे से स्वतंत्र तौर पर देखने की कई दिक्कतें हैं। वे इन संसाधनों के एकीकृत इस्तेमाल पर ज़ोर देते हैं। वे इस अजीबो-गरीब बात की ओर संकेत करते हैं कि सतही जल संसाधन का विकास होने के बावजूद भूजल संसाधन का ह्रास होता रहता है। उनका कहना है कि, "नर्मदा के पानी से इस असामान्य स्थिति में सुधार होना चाहिए तथा संसाधन वितरण में संतुलन आना चाहिए। उत्तर गुजरात में मेहसाना और बनासकांठा की पथरीली संरचना (alluvial terrain) के अधिकतर हिस्से की जलवैज्ञानिक स्थिति अनूठी है....**यहां की भूजल भण्डारण क्षमता सरदार सरोवर की कुल भण्डारण क्षमता की दुगनी है।**"

स्पष्ट है कि भूजल भण्डारण क्षमता की कोई कमी नहीं है। खासतौर से गुजरात के सूखाग्रस्त क्षेत्रों में तो इसकी कोई समस्या ही नहीं है। साथ ही भूजल का पुनर्भरण तथा टिकाऊ इस्तेमाल इन इलाकों में एक अर्जेन्ट समस्या है। हमने ऊपर 45 से 50 लाख एकड़ फुट सतही भण्डारण क्षमता का प्रावधान किया है तथा यदि इस क्षमता को एक मर्तबा भी नर्मदा पानी से दोबारा भरने की व्यवस्था करें तो हमें 27 से 22 लाख एकड़ फुट भूजल भण्डारण की ज़रूरत होगी। वास्तव में भूजल भण्डारण क्षमता, सतही भण्डारण क्षमता से लगभग दुगनी यानी लगभग 90 से 100 लाख एकड़ फुट होगी। अर्थात् हमारे पास भण्डारण क्षमता के लिहाज़ से इतनी गुंजाइश मौजूद है कि क्षेत्रीय विविधता के अनुरूप भण्डारण व्यवस्था अपनाई जा सके।

संक्षेप में, गुजरात के ग्रामीण क्षेत्रों के लिए जिस 72 लाख एकड़ फुट पानी का आवंटन हुआ है उसका उपयोग करने के लिए हमें अधिकतम 10 लाख एकड़ फुट (1,25,000 हैक्टर-मीटर) नई सतही भण्डारण क्षमता निर्मित करनी होगी।

भूजल पुनर्भरण हेतु कितना रकबा लगेगा?

कई लोगों ने यह सवाल उठाया है कि भूजल पुनर्भरण के लिए कितनी ज़मीन लगेगी। यहां यह स्पष्ट करना ज़रूरी है कि भूजल पुनर्भरण का काम क्षेत्र की भौगोलिक बनावट के अध्ययन पर आधारित होता है। मसलन हम इस

काम को ऐसे इलाके में कदापि नहीं करेंगे जो दलदलीकरण के जोखिम से ग्रस्त हो या जहां की मिट्टी की रिसन दर कम हो या जहां बहुत संकरे भूजल भण्डार (एक्वीफर्स) हों। परन्तु, जैसा कि डॉ. पटेल ने बताया है, कच्छ, सौराष्ट्र व उत्तर गुजरात के अधिकांश इलाके इस लिहाज़ से उपयुक्त हैं।

भूजल पुनर्भरण के लिए ज़रूरी ज़मीन के क्षेत्रफल की गणना करने के लिए देखना होता है कि उस क्षेत्र की रिसन दर कितनी है तथा कितनी अवधि में कितना पानी भूजल में पहुंचाया जाना है।

मान लीजिए हम ग्रामीण गुजरात के हिस्से के समूचे 72 लाख एकड़ फुट नर्मदा पानी को 120 दिन की अवधि में 1 वर्ग मीटर क्षेत्र में भूजल में रिसा देना चाहते हैं। इसके रिसाव के लिए रिसन दर की गणना निम्नानुसार की जा सकती है -

72 लाख एकड़ फुट = $72 \times 1250 \times 10^5$ leve ceerŠj

120 दिन = $120 \times 86{,}400$ सेकण्ड

रिसन दर = $\frac{72 \times 1250 \times 10^5 \text{ घनमीटर}}{120 \times 86{,}400 \text{ सेकण्ड}}$

= 868 घन मीटर प्रति सेकण्ड प्रति वर्ग मीटर की रिसन दर आवश्यक होगी।

आम तौर पर रिसाव के लिए उपयुक्त मिट्टी की रिसन दर 1×10^{-5} घन मीटर प्रति सेकण्ड प्रति वर्ग मीटर होती है। अधिकतर सूखा ग्रस्त क्षेत्र की रिसन दर इससे ज़्यादा ही होती है। यदि हम रिसन दर 1×10^{-5} मानें तो ग्रामीण गुजरात को आवंटित समूचे 72 लाख एकड़ फुट पानी के भूजल में रिसाव हेतु बमुश्किल 10,000 हैक्टर ज़मीन लगेगी। वास्तविक आंकड़ा इससे कहीं कम होगा। यह रिसाव क्षेत्र तो बगैर पलस्तर की नहरों, नालों, रिसाव तालाबों, पानी रोकने वाले ढांचों के पीछे भरे पानी तथा अन्ततः पुनर्भरण हेतु विशेष रूप से बनाए गए कुओं से प्राप्त हो सकता है।

नहर संरचना (Canal alignment)

नहर मार्ग के सन्दर्भ में सबसे प्रमुख व पहला फैसला तो स. स. प. की मुख्य नहर को लेकर करना होगा। यह नहर स. स. प. से 90 मीटर की ऊंचाई पर शुरू होती है। यह ऊंचाई बहुत है। मही नदी तक नहर का अधिकांश भाग बन चुका है या प्रगति पर है। इस नहर का मार्ग बदलने का मतलब होगा कि इतने खर्च को बट्टे खाते डालना और वैकल्पिक नहर मार्ग पर नए सिरे से खर्च करना। इसलिए हमने मजबूर होकर मही तक तो मुख्य नहर के मार्ग को जस का तस रखा है।

सौराष्ट्र व कच्छ के अन्दर हमने मुख्य फीडर नहरों को चक्राकार नहरों के रूप में रखा है जो क्रमशः 50 व 70 मीटर की ऊंचाई पर होंगी। हमारा विचार है कि भरुच के आगे बराजों की एक शृंखला होगी जिसके द्वारा पानी को लिफ्ट करके सौराष्ट्र की मुख्य फीडर नहर में डाला जाएगा। बराजों की दूसरी शृंखला स. स. प. मुख्य नहर के अन्तिम छोर से पानी लिफ्ट करके कच्छ की मुख्य फीडर नहर में डालेगी।

अलबत्ता कई अन्य विकल्प मौजूद हैं। मसलन पानी को गरुड़ेश्वर से भी लिफ्ट किया जा सकता है जहां वैसे भी एक वेयर (weir) बनाने की योजना है। गरुड़ेश्वर वेयर का उपयोग यह है कि स.स.प. के बिजली घर हेतु पम्प

जनित भण्डारण किया जा सकेगा। गरुड़ेश्वर वेयर से पानी लिफ्ट करने पर भरुच बराज का खर्च बच जाएगा। यह भी संभव है कि गरुड़ेश्वर से एक निम्न स्तरीय फीडर नहर स.स.प्र. मुख्य नहर के मौजूदा अन्तिम छोर तक ले जाई जाए, जो कच्छ कमान के नज़दीक है। यह संभावना भी है कि मुख्य नहर का पानी मही या साबरमती में छोड़ा जाए और आगे जाकर किसी सुविधाजनक स्थान पर निम्न स्तरीय फीडर नहर में लिफ्ट कर लिया जाए। साबरमती पर फिलहाल कई बराज मौजूद हैं, जिनका उपयोग इस काम के लिए किया जा सकता है। एक अन्य उच्च स्तरीय फीडर नहर ऊंचे क्षेत्रों को पानी पहुंचा सकती है तथा साथ में भूजल पुनर्भरण में भी मददगार साबित हो सकती है।

कच्छ व सौराष्ट्र की मुख्य फीडर नहरों को हमने कन्टूर (एक-सी ऊंचाई पर बहने वाली) नहरें माना है, जिनका उच्च स्तर बनाए रखने के लिए जगह-जगह पर पानी पम्प करना होगा। इस हेतु पम्पों की ज़रूरी लागत हम खर्च में

शामिल करेंगे। अन्य फीडर नहरें गुरुत्व नहरें होंगी। लागत की गणना में हमने अधिकतर विकल्पों को शामिल किया है और इस वजह से जो दोहराव हुआ है उसे अनदेखा कर दिया है। हम तो विकल्प की अधिकतम लागत की गणना के सिद्धांत पर काम कर रहे हैं। उदाहरण के लिए उच्च स्तरीय फीडर नहरें काफी दूर तक बिना पलस्तर बनाई जा सकती हैं क्योंकि इनका प्रमुख प्रयोजन तो पुनर्भरण का है मगर हमने नहरों की लागत की गणना में पलस्तरयुक्त नहरों की लागत गिनी है।

हमने माना है कि मुख्य फीडर नहरों से 40 कि.मी. लम्बाई की सेकण्डरी फीडर नहरें निकलेंगी जिनकी क्षमता 30-40 क्यूमेक (घन मीटर प्रति सेकण्ड) की होगी। इससे एक बुनियादी तंत्र बन जाएगा जिसे बाद में स्थानीय ज़रूरतों के अनुरूप ढाला जा सकेगा। ये सेकण्डरी फीडर नहरें स्थानीय तंत्र का पोषण करेंगी। इस पूरे तंत्र की लागत की गणना खण्ड 2 में की गई है।

भरुच बराज

हमने जब भी इस विकल्प की चर्चा की है, तब-तब भरुच बराज चर्चा का मुद्दा रहा है। अतः यहां हम इसकी बात थोड़े विस्तार में करना चाहेंगे। यदि भरुच बराज न बनाया जाए और मूल स.स.प. योजना के मुताबिक ही समूचा पानी स.स.प. से ही मोड़ा जाए तो कच्छ और सौराष्ट्र को आवंटित पूरे पानी को नहर के अन्तिम छोर तक ले जाना होगा और फिर वहां से लिफ्ट करना होगा। यह पानी करीब 32 लाख एकड़ फुट है तथा इस तरह परिवहन किए जाने वाले कुल पानी का 45% है। इसमें कई समस्याएं हैं। हमें यह बेहतर लगता है कि भरुच पर एक स्वतंत्र बराज हो जिसे अन्य डिलीवरी प्रणालियों से अलग संचालित किया जाए। इसी प्रकार से गरुड़ेश्वर वेयर या मही अथवा साबरमती में किसी उपयुक्त स्थल से एक स्वतंत्र निम्न स्तरीय नहर से कच्छ को पानी पहुंचाना बेहतर होगा।

यह दलील भी दी गई है कि गरुड़ेश्वर से पानी को मोड़ना बेहतर होगा क्योंकि भरुच की तुलना में गरुड़ेश्वर पर ऊंचाई ज़्यादा है। यह बखूबी मुमकिन है। परन्तु भरुच पर लिफ्ट करने का एक अतिरिक्त लाभ है। इसकी बदौलत नर्मदा के लगभग मुहाने तक 24 लाख एकड़ फुट पानी का बहाव अविरत जारी रहेगा। यदि पानी को इससे पूर्व किसी स्थल से मोड़ा गया, तो नर्मदा का सारा भरोसेमंद प्रवाह समाप्त हो जाएगा।

इसकी अपनी पर्यावरण सम्बंधी समस्याएं होंगी। मोर्स आयोग ने इस पर चिंता ज़ाहिर की थी।

दूसरी दलील का सम्बंध बराज के अपने पर्यावरण प्रभाव से है। परन्तु हमारा विचार है कि विकल्प में संचालन का जो एक अलग चक्र रखा गया है उसकी वजह से पर्यावरण सम्बंधी प्रतिकूल प्रभाव न्यूनतम होंगे। दरअसल हमारे खयाल से ये प्रभाव किसी भी अन्य विकल्प की तुलना में कम होंगे। पहली बात तो यह है कि बराज को मात्र मानसून और मानसून के तत्काल बाद ही संचालित किया जाएगा। दिसम्बर के बाद से तो बराज द्वार पूरी तरह खुले रखे जा सकते हैं ताकि सागर-संगम की अन्तक्रियाओं में बाधा न पहुंचे।

और आखिरी बात यह है कि भरुच बराज की वजह से हमारी लागत अधिकतम हो जाती है। यदि बाद में सौराष्ट्र को पानी पहुंचाने की किसी अन्य विधि पर आम राय बनती है तो इसे, लागत में कोई वृद्धि किए बगैर विकल्प के ढांचे में जोड़ा जा सकेगा।

बांध की ऊंचाई

बांध की ऊंचाई निर्धारित करने के लिए हम मानसून पश्चात् आधार रेखा 90 मीटर मानकर चल रहे हैं क्योंकि नहर की ऊंचाई इतनी रखी गई है। हमें इस आधार रेखा से ऊपर बहाव के नियमन हेतु अतिरिक्त भण्डारण करना होगा ताकि नहर संचालन हेतु पर्याप्त ऊंचाई मिल सके। हमने 90 मी. आधाररेखा के ऊपर नियमन क्षमता 10 लाख एकड़ फुट मानी है। यह 25 दिन नहर संचालन के लिए उपयुक्त है। यदि नहर संचालन हेतु ज़रूरी न्यूनतम स्तर को इसमें से घटा दें तो हमारे पास नियमन हेतु 20 दिन की बफर क्षमता मौजूद होगी।

बिजली उत्पादन को हम एक गौण लाभ मानते हैं। अतः बिजली उत्पादन का निर्धारण इस आधार पर होगा कि नहर संचालन के क्या मापदण्ड तय किए जाते हैं। इसकी चर्चा अलग से की गई है। यहां इतना ही कहना काफी है कि बांध की ऊंचाई के निर्धारण में बिजली उत्पादन की कोई स्वतंत्र भूमिका नहीं है।

90 मीटर आधाररेखा तथा 10 लाख एकड़ फुट के नियमन भण्डारण के आधार पर बांध की ऊंचाई 107 मीटर आती है।

बिजली उत्पादन

बिजली उत्पादन की बात को दो तरह से देखना होगा — ऊर्जा के नज़रिये से और पॉवर के नज़रिये से। इन दोनों पहलुओं का महत्व अलग-अलग है किन्तु दुर्भाग्यवश इनमें प्रायः घालमेल कर दिया जाता है। पहले ऊर्जा के पहलू पर गौर करते हैं। तथ्य यह है कि गुजरात की कुल ऊर्जा खपत में सरदार सरोवर की बिजली की भूमिका नगण्य है। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक इस बांध से शुरुआत में सालाना 36,000 लाख युनिट बिजली पैदा होगी किन्तु अपस्ट्रीम बांधों के बनते जाने, अपस्ट्रीम पानी का इस्तेमाल बढ़ने तथा नहर संचालन के विकास के साथ यह घटते-घटते सालाना 4,000 लाख युनिट रह जाएगी। इसमें से गुजरात का हिस्सा मात्र 17 प्रतिशत है। अर्थात् शुरुआत में गुजरात को 6,120 लाख युनिट बिजली मिलेगी और आगे चलकर मात्र 680 लाख युनिट रह जाएगी। वर्ष 1992-93 में गुजरात ने 2,30,000 लाख युनिट बिजली खर्च की थी। यानी सरदार सरोवर से प्राप्त अधिकतम बिजली इसका मात्र 2.6 प्रतिशत है। और वह भी धीरे-धीरे घटकर 92-93 की खपत का 0.3 प्रतिशत रह जाएगी। मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र के हाल भी कुछ ऐसे ही हैं। इसी वजह से मूल योजना में भी बिजली को एक गौण लाभ माना गया है। कोशिश यह की गई है कि पूरे तंत्र के हरकत में आने से पूर्व की अवधि में बिजली उत्पादन का लाभ उठा लिया जाए।

स.स.प. से पॉवर : उच्चतम मांग आपूर्ति (peak load)

आइए अब बिजली उत्पादन पर पॉवर के नज़रिये से विचार करें। पॉवर का सम्बंध ऊर्जा उपयोग की दर से होता है। इन दोनों (ऊर्जा तथा पॉवर) के बीच के अन्तर को समझना ज़रूरी है। मसलन यदि मांग का पैटर्न ऐसा है कि प्रतिदिन 10 लाख युनिट प्रति घण्टे की दर से खपत हो, तो यह प्रति घण्टे पॉवर के रूप में 1000 मैगावॉट के बराबर है। दिन भर में खपत 240 लाख युनिट होगी। दूसरी तरफ मान लीजिए कि 30 लाख युनिट प्रति घण्टे की दर से प्रतिदिन 8 घण्टे ही खपत होती है। ऊर्जा की खपत तो 240 लाख युनिट ही होगी। पहले मामले में 1000 मेगावॉट के संयंत्र से काम चल जाएगा मगर दूसरे किस्म की मांग को पूरा करने के लिए 3000 मैगावॉट के संयंत्र की ज़रूरत होगी, हालांकि दोनों ही मामलों में कुल ऊर्जा खपत बराबर है।

अर्थात् यहां मुख्य मुद्दा peak load का यानी उच्चतम भार का है। बिजली की खपत का पैटर्न कुछ ऐसा है कि यह दिन भर एकरूप दर से खर्च नहीं होती। शाम 5 बजे से लेकर लगभग मध्य-रात्रि तक बिजली की खपत बहुत बढ़ जाती है। इसे आमतौर पर उच्चतम भार या उच्चतम पॉवर मांग कहा जाता है। बिजली उत्पादन प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि वह कुल ऊर्जा की पूर्ति करने के अलावा उचित रफ्तार से पूर्ति कर सके। उच्चतम भार से निपटने के दो तरीके हैं। एक तरीका तो यह है कि मांग का नियोजन किया जाए। यह तरीका दूरगामी है किन्तु इससे समस्या का पूरा समाधान नहीं हो सकता।

दूसरा तरीका है— पनबिजली उत्पादन क्षमता का इस्तेमाल। यहां हमें पनबिजली के विशेष गुणों पर ध्यान देना होगा। पनबिजली संयंत्र को अपनी पूरी उत्पादन क्षमता से बिजली उत्पादन शुरू करने में ज़्यादा समय नहीं लगता। अन्य किस्म के बिजली संयंत्र इतने लचीले नहीं होते। उनको बन्द-चालू करने में बहुत समय लगता है तथा उनके उत्पादन की दर में परिवर्तन करना मुश्किल होता है। पनबिजली संयंत्र की यह विशेषता होती है कि मांग बढ़ने पर इसे तत्काल शुरू करके उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। इसी प्रकार मांग कम होने पर इसे उतनी ही तीव्रता से बन्द भी किया जा सकता है। इसी गुण के कारण आम तौर पर उच्चतम भार से निपटने के लिए पनबिजली संयंत्र का उपयोग किया जाता है।

स्वाभाविक है कि किसी भी पनबिजली घर का तथाकथित 'फर्म पॉवर' उसकी कुल स्थापित क्षमता से कम होगा। परन्तु यह कोई आलोचना नहीं है; यह तो एक ज़रूरत है। 'फर्म पॉवर' की अवधारणा दरअसल ऊर्जा को पॉवर के रूप में व्यक्त करने का तरीका है। दरअसल फर्म पॉवर का अर्थ यह होता है कि यदि इतने पॉवर का संयंत्र लगातार स्थिरता से उत्पादन करे तो प्रतिदिन वह कितना पॉवर उत्पन्न करेगा। यानी फर्म पॉवर में हम एक काल्पनिक संयंत्र द्वारा 24 घण्टे में एकरूप दर से उत्पादित पॉवर की गणना कर रहे हैं।

ज़रा ऊपर वाले उदाहरण पर फिर से गौर करें। मांग का एक पैटर्न है जिसमें 240 लाख युनिट ऊर्जा की खपत 10 लाख युनिट प्रति घण्टा की दर से 24 घण्टों में होती है। मांग का दूसरा पैटर्न है जिसमें 240 लाख युनिट ऊर्जा की खपत 30 लाख युनिट प्रति घण्टा की दर से 8 घण्टों में होती है। पहले मामले में 1000 मेगावॉट का संयंत्र लगेगा जबकि दूसरे मामले में 3000 मेगावॉट के संयंत्र की ज़रूरत होगी। पहले संयंत्र का फर्म पावर उसकी स्थापित क्षमता (1000 मेगावॉट) के बराबर होगा जबकि दूसरे संयंत्र का फर्म पॉवर भी मात्र 1000 मेगावॉट होगा जो कि उसकी स्थापित क्षमता का मात्र एक-तिहाई भाग है। मगर उस तरह की मांग को पूरा करने के लिए यह ज़रूरी है। यह कोई

आलोचना का मुद्दा नहीं है। हमने अपने विकल्प में यथासंभव उच्चतम मांग की आपूर्ति के लाभ बरकरार रखने की कोशिश की है।

पनबिजली का वैकल्पिक नज़रिया

पर्यावरणीय प्रभावों के कारण पनबिजली आलोचना के दायरे में आ गई है। मगर पनबिजली के अधिकतर प्रभावों का सम्बन्ध इस बात से है कि उसकी योजना किस ढंग से बनाई जाती है। कई पर्यावरण प्रभाव बांध के पीछे विशाल जलाशय के परिणाम स्वरूप होते हैं। पनबिजली को लेकर हमारे वैकल्पिक नज़रिये में इस कड़ी को तोड़ दिया गया है। इसके लिए पनबिजली के बारे में बहती नदी में उत्पादन के रूप में सोचना होगा। पनबिजली को छोटे संयंत्रों के रूप में एक आत्मनिर्भर ऊर्जा प्रणाली में जोड़ने के अन्य कई तरीकों की चर्चा हम खण्ड 3 में करेंगे। यहां हम सप्तप. के मुख्य नदी संयंत्र के वैकल्पिक संचालन की चर्चा ही करेंगे।

वैकल्पिक योजना में पनबिजली संयंत्र का संचालन दो चरणों में विभक्त किया गया है : पहला चरण बहती नदी में उत्पादन का चरण है जिसमें मानसूनी बहाव को बिजली उत्पादन के लिए उपयोग किया जाएगा। दूसरे चरण में पम्पजनित जलाशय के ज़रिये संयंत्र चलाकर उच्चतम भार की आपूर्ति की जाएगी।

पहले चरण में संयंत्र संचालन का चक्र कुछ इस ढंग से बनाया गया है कि नदी प्रवाह का अधिकतम इस्तेमाल बिजली उत्पादन के लिए किया जा सके। एक ऐसे संयंत्र की कल्पना कीजिए जो 2000 क्यूमेक बहाव को जज़्ब करने की क्षमता रखता है। यह लगभग 72 लाख घन मीटर प्रति घण्टे के बहाव के तुल्य है। यानी जब नदी प्रवाह 1728 लाख घन मीटर प्रतिदिन से ज़्यादा हो, तब यह संयंत्र चौबीसों घण्टे काम कर सकेगा। यदि बहाव इससे कम होगा तो संयंत्र कम समय के लिए काम करेगा - मसलन यदि बहाव 800 लाख घन मीटर प्रतिदिन है तो संयंत्र 12 घण्टे काम करेगा। संयंत्र के संचालन का समयचक्र इस ढंग से बनेगा कि यह अधिकतम बहाव का उपयोग करे। यह प्रथम चरण तब तक जारी रहेगा जब तक कि नदी का बहाव इतना कम न हो जाए कि इससे उच्चतम भार आपूर्ति होना संभव न रहे। यह बहाव, उक्त उदाहरण में लगभग 432 लाख घन मीटर प्रतिदिन होगा, यानी 6 घण्टे संचालन के लिए उपयुक्त।

जब बहाव इस मान से कम हो जाएगा तब उच्चतम भार आपूर्ति हेतु पम्पजनित जलाशय का संचालन शुरू होगा। पन- बिजली संयंत्रों में पम्पजनित जलाशय का इस्तेमाल एक आम प्रथा है। सिद्धांत यह है कि गैर उच्चतम भार वाली अवधि में अन्यत्र उत्पादित बिजली का इस्तेमाल उच्चतम भारवाले समय पर किया जाए। इसमें भी हमें बहती नदी से होने वाले उत्पादन का लाभ मिलता रहेगा क्योंकि इसकी बदौलत हमें पम्पिंग कम करना होगा।

पनबिजली संयंत्र में पम्पजनित जलाशय का उपयोग करना उच्चतम भार की आपूर्ति करने का एक तरीका है। एक उदाहरण से बात को समझने की कोशिश करते हैं। ऊर्जा की मांग का निम्नांकित पैटर्न देखिए : सुबह 8 बजे से शाम 6 बजे तक 1100 मेगावॉट, शाम 6 बजे से रात्रि 12 बजे तक 2000 मेगावॉट और रात्रि 12 बजे से सुबह 8 बजे तक 125. मेगावॉट। कुल उत्पादन 24,000 मेगावॉट-घण्टे का चाहिए - यानी 240 लाख युनिट। इतना भार एक ऐसा संयंत्र संभाल सकता है जिसकी स्थापित क्षमता 1100 मेगावॉट हो और वह 24 घण्टे काम करे। मगर यह संयंत्र उच्चतम भार की पूर्ति नहीं कर पाएगा। मान लीजिए कि हमारे पास उक्त संयंत्र के अलावा 1000 मेगावॉट का

पनबिजली संयंत्र है मगर बांध के पीछे कोई भण्डारण नहीं है। इस तरह की परिस्थिति में समाधान यह है कि हम इस पनबिजली संयंत्र का उपयोग पम्पजनित जलाशय संयंत्र के रूप में करें।

रात्रि 12 बजे से सुबह 8 बजे तक भार कम है। इस अवधि में हम सारी अतिरिक्त ऊर्जा का उपयोग पानी को संयंत्र के नीचे (डाउनस्ट्रीम) से पम्प द्वारा संयंत्र से ऊपर (अपस्ट्रीम) भरने के लिए कर सकते हैं। सुबह 8 बजे से यह प्रणाली आधारभूत मांग की पूर्ति कर सकेगी। शाम 6 बजे से पनबिजली संयंत्र को शुरू किया जाए और रात में ऊपर भण्डारित पानी को बिजली उत्पादन के लिए छोड़ा जाए। इससे जो 1000 मेगावॉट बिजली का अतिरिक्त उत्पादन होगा वह उच्चतम भार की पूर्ति करेगा। यानी हमने गैर उच्चतम भार वाली अवधि में उत्पादित ऊर्जा का उपयोग उच्चतम भार अवधि की मांग को पूरा करने के लिए कर लिया।

उपरोक्त वैकल्पिक नज़रिये की एक विशेषता यह है कि यह बांध के पीछे भरे पानी पर निर्भर नहीं है। यह उन परिस्थितियों में बहुत कारगर है जब पनबिजली को एक गौण लाभ के रूप में देखा जा रहा हो। यह नज़रिया न हो, तो यही होता है कि परियोजना से बिजली का लाभ प्राप्त करने के लिए बांध के पीछे अधिक से अधिक पानी संग्रह करने की मांग उठती है।

स.स.प. पर बिजली उत्पादन: वैकल्पिक नज़ारा

वर्तमान योजना के मुताबिक स.स.प. में एक नदी-पात्र बिजली घर होगा जिसकी स्थापित क्षमता 1200 मेगावॉट (200 मेगावॉट की 6 इकाइयां) होगी और एक नहर-मुख बिजली घर होगा जिसकी स्थापित क्षमता 250 मेगावॉट (50 मेगावॉट की पांच इकाइयां) होगी। इस प्रकार से कुल स्थापित क्षमता 1450 मेगावॉट होगी। इसमें से नहर-मुख बिजली घर इस बात पर टिका है कि खूब ऊंचा बांध बने। हमारे विकल्प में इसके लिए कोई स्थान नहीं होगा। हम 1200 मेगावॉट क्षमता वाले नदी-पात्र बिजली घर को ही बिजली उत्पादन का साधन मानकर चलेंगे। विकल्प में पानी निकासी का न्यूनतम स्तर 90 मीटर होगा।

बहती नदी में उत्पादन हेतु संयंत्र (उपकरण) में तो कोई विशेष परिवर्तन नहीं होगा मगर इसके संचालन सम्बंधी निर्णयों तथा समय चक्र में आमूल परिवर्तन होंगे। इन दो किस्म के उत्पादनों की सीधी तुलना करना भी सम्भव नहीं है। आज जो स.स.प. की योजना है उसके मुकाबले बहती नदी से मिलने वाले बिजली लाभ की गणना करना कहीं ज़्यादा कठिन है। इसके लिए हमें नदी बहाव के आंकड़ों के बारे में मान्यता बनानी पड़ी, नहर में निरन्तर बहाव मानना पड़ा और 10 लाख एकड़ फुट नियमन संग्रह को हिसाब में जोड़ना पड़ा और बिजली उत्पादन का एक समीकरण विकसित करना पड़ा। हमारे पास फिलहाल नर्मदा बहाव के जो सर्वोत्तम आंकड़े हैं वे गरुड़ेश्वर पर मासिक बहाव के आंकड़े हैं। ये आंकड़े 1949-94 से लेकर 1988-90 की अवधि के हैं। इन आंकड़ों के आधार पर हमने एक मॉडल तैयार किया जिसमें बिजली उत्पादन के मुकाबले नहर बहाव को प्राथमिकता दी गई है। इसके अनुसार 42 वर्षों की अवधि के लिए औसत पॉवर उत्पादन 26000 लाख युनिट आता है।

वैकल्पिक योजना के सम्बंध में दो बातें कहना ज़रूरी है। पहली बात है कि इसमें बिजली उत्पादन साल-दर-साल परिवर्तनशील होगा। दूसरी ज़्यादा दिलचस्प बात यह है कि बिजली उत्पादन चक्र पूरी तरह नर्मदा के विश्वसनीय बहाव

से जुड़ा नहीं है अपितु जिन वर्षों में नर्मदा में बहाव ज़्यादा होता है उसका इस्तेमाल किया जाता है। इस वजह से, बांध की ऊंचाई में तथा न्यूनतम निकास स्तर में काफी कमी करने के बावजूद बिजली के औसत लाभ में कोई खास गिरावट नहीं आती।

यह ज़रूर है कि उपरोक्त औसत आज के हालात में है यानी तब जब मध्यप्रदेश ने अपने हिस्से के पानी का उपयोग नहीं किया है। जैसे-जैसे मध्यप्रदेश अपने हिस्से के नर्मदा पानी का इस्तेमाल करता जाएगा, वैसे-वैसे विकल्प में भी स.स.प. बिजली उत्पादन कम होता जाएगा। परन्तु हमारी गणनाओं के मुताबिक बिजली उत्पादन में यह गिरावट न तो उतनी तेज़ी से आएगी और न उतनी हद तक आएगी जितनी कि स.स.प. की मूल परियोजना में अनुमानित है। ऐसा इसलिए है क्योंकि, जैसा कि हमने पहले बताया कि नर्मदा में विश्वसनीय बहाव से ज़्यादा जितना पानी बहेगा वह बिजली उत्पादन में योगदान देता रहेगा। दूसरा कारण यह है कि सौराष्ट्र को आवंटित पानी भरुच से लिफ्ट किया जाएगा। यानी इतना पानी बांध के नीचे बहता ही रहेगा। इसके अलावा यदि हम नहर का मार्ग ऐसा तय करें कि एक फीडर नहर हेतु पानी गरुड़ेश्वर से उठाया जाए, तो यह पानी भी बांध के नीचे गरुड़ेश्वर तक बहेगा।

अकेले सौराष्ट्र का 24 लाख एकड़ फुट आवंटन 4250 लाख युनिट के बराबर है। यदि हम गरुड़ेश्वर पर पानी को मोड़ने का फैसला करें, तो यह पानी 16 लाख एकड़ फुट अर्थात् 2800 लाख युनिट के तुल्य होगा। यदि हम इसमें वह बिजली भी जोड़ दें जो हमें नर्मदा के विश्वसनीय बहाव से ज़्यादा बहने वाले पानी से मिल सकती है तो हमारा अनुमान है कि कुल उत्पादन 10,000 लाख युनिट होगा। यह भी सम्भावना है कि मध्यप्रदेश द्वारा अपने हिस्से का पानी इस्तेमाल करने से बहाव में एकरूपता आएगी तथा शायद बिजली उत्पादन में उतनी कमी न आए जितनी यहां मानी गई है।

पानी लिफ्ट करने में ऊर्जा खर्च

यह बात समझना ज़रूरी है कि जितनी ऊर्जा पैदा की जाएगी वह सारी की सारी अन्य कार्यों के लिए उपलब्ध नहीं होगी। दरअसल हमारी दलील है कि स.स.प. द्वारा उत्पादित बिजली का पहला उपयोग यह होना चाहिए कि नर्मदा पानी के समतामूलक वितरण तथा टिकाऊ उपयोग को बढ़ावा मिले। वास्तव में हर ऐसी परियोजना, जिसमें बिजली एक गौण चीज़ हो, में प्राथमिकता यही होना चाहिए। मूल स.स.प. में भी, श्रीपाद धर्माधिकारी की गणना के अनुसार, काफी सारी बिजली तो खुद परियोजना में ही खप जाएगी। हम इस सवाल पर खण्ड 2 में पुनः चर्चा करेंगे।

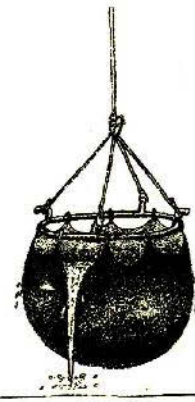

यहां हम इस बात की गणना करेंगे कि पहले चरण में परियोजना में अन्दरूनी ऊर्जा खपत कितनी होगी। वैकल्पिक योजना में सौराष्ट्र व कच्छ मुख्य फीडर नहरों में पानी लिफ्ट करने में तथा नहरों को उनकी निर्धारित ऊंचाई पर रखने में ऊर्जा खर्च होगी। इस कार्य में कुल ऊर्जा खपत 14000 लाख युनिट होगी तथा इसके लिए 475 मेगावॉट पम्प क्षमता लगेगी। इस गणना के पीछे मान्यता यह है कि पानी को लिफ्ट करने का काम करीब 120 दिन या 3000 घण्टों में पूरा किया जाएगा ।

पम्पजनित जलाशय संयंत्र संचालन सम्बंधी मुद्दे

स.स.प. में पम्प जनित जलाशय संचालन की आलोचना यह कहकर हुई है कि यह बहुत महंगा है तथा स.स.प. पर बिजली उत्पादन के लिए ऊंचाई बहुत कम है। इन मुद्दों पर चर्चा ज़रूरी है। स.स.प. बिजली की अत्यधिक लागत इस वजह से है क्योंकि लागत का बहुत बड़ा हिस्सा बिजली उत्पादन के मद में डाला गया है। यह तरीका उन परियोजनाओं के लिए ठीक होता है जिनमें बिजली गौण लाभ न होकर, मुख्य मकसद हो। हमने एक भिन्न तरीका अपनाया है। हमने बिजली उत्पादन के अपने विकल्प की लागत का एक तर्कसम्मत अंश ही बिजली उत्पादन के मद में डाला है। हमारा अनुमान है कि यह राशि 25,000 रुपए प्रति किलोवॉट स्थापित क्षमता होना चाहिए।

दूसरी आलोचना यह है कि स.स.प. में पानी गिरने की ऊंचाई बहुत कम है। विकल्प में तो यह और भी कम है। यह सही है कि स.स.प. प्राकृतिक रूप से आदर्श पनबिजली उत्पादन स्थल नहीं है। दरअसल जलसिंधी इस लिहाज़ से कहीं बेहतर जगह थी, जो स.स.प. के डूब में आ रही है। परन्तु आमतौर पर यह बात नहीं समझी जाती कि बाहरी पानी का समतामूलक व टिकाऊ इस्तेमाल सुनिश्चित करने में ऊर्जा खर्च होती है। इसलिए यह ज़रूरी है कि सिंचाई प्रणाली (बांध की ऊंचाई सहित) के मापदण्डों के दायरे में रहते हुए भी तथा तर्कसम्मत अतिरिक्त खर्च का भार वहन करते हुए जितनी ऊर्जा प्राप्त की जा सके, की जानी चाहिए।

हर पम्पजनित जलाशय स्थल पर डाउनस्ट्रीम में कम से कम इतना बड़ा जलाशय होना चाहिए कि उससे उच्चतम भार आपूर्ति हेतु संचालन की दैनिक ज़रूरतें पूरी हो सकें। इसलिए अधिकांश पम्पजनित जलाशय स्थल काफी ऊंचाई वाली जगह पर होते हैं। एक निश्चित स्थापित क्षमता पर पानी को गिरने के लिए जितनी ऊंचाई मिलेगी उतना कम पानी बहाना पड़ेगा। अतः डाउनस्ट्रीम जलाशय भी उसी अनुपात में छोटा लगेगा। स.स.प. के मामले में तकरीबन 0.5 लाख एकड़ फुट का डाउनस्ट्रीम जलाशय ज़रूरी होगा। स.स.प. पर पानी को गिराने की ऊंचाई कम है मगर नर्मदा का पाट चौड़ा होने की वजह से काफी पानी इसके कछार में ही संग्रह किया जा सकेगा। वास्तव में गरुड़ेश्वर बराज की सरकार की योजना है। यह बराज डाउनस्ट्रीम जलाशय की ज़रूरत की पूर्ति कर देगा।

हम यहां इस बात पर ज़रूर ध्यान दिलाना चाहेंगे कि बहती नदी में बिजली उत्पादन की बात पम्पजनित जलाशय के बारे में सोचने के ढंग को काफी बदल देती है। बहती नदी में बिजली उत्पादन के साथ-साथ पम्पजनित जलाशय से बिजली उत्पादन करना कम ऊंचाई तथा ज़्यादा बहाव वाले तंत्र के उपयोग का एक उत्तम तरीका है।

विस्थापन : सबसे अहम मुद्दा

विस्थापन पर वैकल्पिक डिज़ाइन का क्या असर होगा? मूल स.स.प. का पूर्ण जलाशय स्तर 138.8 मीटर है तथा इसमें 36,000 हैक्टर भूमि डूबने वाली है। विकल्प में पूर्ण जलाशय स्तर 107 मीटर है तथा डूब क्षेत्र 10,800 हैक्टर है। यानी नर्मदा में गुजरात के हिस्से को कम किए बगैर विकल्प के तहत् डूब में 70 प्रतिशत की कमी की गई है।

दरअसल उन लोगों व गांवों की संख्या में तो और भी कमी आएगी जिन्हें अन्यत्र बसाना पड़ता। ऐसे गांवों और लोगों की संख्या में 90 प्रतिशत तक की कमी आएगी। गुजरात के हिस्से के पानी में कमी किए बगैर डूब व विस्थापन में जो उल्लेखनीय कमी आएगी, वह हमारे विकल्प के पक्ष में सबसे ज़ोरदार दलील है। इसकी बदौलत

परियोजना की मानवीय लागत बेकाबू नहीं रह जाएगी। हम खण्ड 2 में स्पष्ट करेंगे कि इसका परिणाम यह होगा कि एक ऐसी पुनर्वास नीति बन सकेगी जिसमें सामाजिक व सांस्कृतिक रूप से लोगों को हटाने व उजाड़ने की बात कम से कम होगी।

स्थानीय पानी संग्रह, स्थानीय डूब

यदि स्थानीय सतही भण्डार निर्मित किए जाएंगे, तो ज़ाहिर है कि ये जल भण्डार उथले होंगे और छोटे या मझौले आकार के होंगे। लिहाज़ा इनके द्वारा होने वाली डूब कहीं ज़्यादा होगी। शायद 10 गुना तक ज़्यादा हो। तब क्या हम बांध के पीछे डूब को कम करके, वास्तव में उससे कहीं ज़्यादा डूब नहीं ला रहे हैं? इस सवाल पर गौर करना ज़रूरी है। हमारा अनुमान है कि 10 लाख एकड़ फुट नई पानी संग्रह क्षमता निर्मित करनी होगी। इससे होने वाली डूब पर यहां आगे विचार किया गया है।

नए सतही जलाशयों के लिए ज़रूरी ज़मीन की गणना करने में कई मान्यताओं का सहारा लेना पड़ा। हमने ऊपर ज़िक्र किया था कि सतही जलाशयों से दुगनी क्षमता के भूजल भण्डार निर्मित करना सम्भव है। मगर हमने अपनी वैकल्पिक डिज़ाइन को पूरी तरह इस मान्यता पर आधारित नहीं रखा है। यदि हमने वैसा किया होता, तो विकल्प हेतु कुल 24 लाख एकड़ फुट सतही भण्डारण क्षमता की ज़रूरत होती। नई क्षमता निर्मित किए बगैर वैसे ही 30 से 35 लाख एकड़ फुट क्षमता उपलब्ध है। अतः नए सतही जलाशय बनाने की ज़रूरत ही नहीं रह जाती। हमने वर्तमान भण्डारण क्षमता 20 लाख एकड़ फुट मानी है, इस मौजूदा क्षमता में 5 लाख एकड़ फुट की वृद्धि करने की बात की है तथा 10 लाख एकड़ फुट नई क्षमता विकसित करने की योजना रखी है। इस प्रकार से कुल सतही जल भण्डारण क्षमता 35 लाख एकड़ फुट हो जाएगी। इससे दुगनी यानी 70 लाख एकड़ फुट भूजल भण्डारण क्षमता को जोड़कर कुल भण्डारण क्षमता 105 लाख एकड़ फुट हो जाती है। यानी हमारे पास काफी अतिरिक्त भण्डारण क्षमता उपलब्ध है।

हमें पूर्णतः नवीन सतही जल संग्रह क्षमता की ज़रूरत शायद बहुत कम होगी। इसके लिए हमें निम्नलिखित दो बातों पर ध्यान देना होगा :

(1) मौजूदा सतही जल भण्डारों की क्षमता मिट्टी साफ करके, उनके किनारों की ऊंचाई बढ़ाकर तथा उन्हें मज़बूत करके बढ़ाई जा सकती है।

(2) एक उपयुक्त पुनर्भरण समय-चक्र लागू करना। अलबत्ता इसके लिए कई बातों का सघन अध्ययन करना ज़रूरी होगा :

(क) हमें पूरी तरह निर्धारित नहर मार्ग की ज़रूरत होगी,

(ख) मौजूदा जल भण्डारों का अध्ययन और

(ग) पुनर्भरण समय-चक्र का निर्धारण। यह कार्य काफी सटीक व व्यापक जानकारी की मांग करता है जिसके लिए ज़रूरी संसाधन व मानवशक्ति हमारे निजी बूते से बाहर है। अतः हमने अतिरिक्त जल संग्रह क्षमता निर्मित करने की बात को मान लेना बेहतर समझा।

बफर भण्डारण की ज़रूरत

दूसरी बात यह है कि हमारे अनुमान के मुताबिक, यदि उपयोगकर्ताओं द्वारा पानी उपयोग पर नियंत्रण रखा जाना है, तो कमान क्षेत्र को प्रदाय पानी के 10% के बराबर अतिरिक्त बफर क्षमता मौजूद होना ज़रूरी है। सरदार सरोवर परियोजना द्वारा गुजरात के विभिन्न हिस्सों को 72 लाख एकड़ फुट पानी पहुंचाया जाएगा। तब मात्र इस तंत्र की कार्यक्षमता तथा उपयोगकर्ताओं के नियंत्रण के लिहाज़ से 7.2 लाख एकड़ फुट स्थानीय बफर क्षमता का होना ज़रूरी है। इस बात को मौजूदा डिज़ाइन में अनदेखा किया गया है। तब तो चाहे वैकल्पिक परिवहन प्रणाली मंज़ूर हो या न हो, इस 7.2 लाख एकड़ फुट जल भण्डारण क्षमता का बोझ परियोजना लागत में ही जोड़ा जाना चाहिए। और जैसा कि हमने ऊपर स्पष्ट किया कि हो सकता है कि विकल्प की दृष्टि से यह 7.2 लाख एकड़ फुट क्षमता पर्याप्त हो।

बहरहाल यदि हम प्रणाली की कार्यक्षमता के लिए ज़रूरी 7.2 लाख एकड़ फुट स्थानीय भण्डारण क्षमता की बात को छोड़ दें, तो 10 लाख एकड़ फुट क्षमता के लिए कितनी डूब होगी? यदि जल भण्डारों की औसत गहराई 2 मीटर लें, तो 10 लाख एकड़ फुट में 62,500 हैक्टर भूमि डूबेगी। यदि इसकी तुलना परियोजना के कुल सेवा क्षेत्र (40 लाख हैक्टर) से करें तो यह उसका मात्र 1.6 प्रतिशत है। तब क्या हम यह मानें कि परियोजना से लाभांवित लोग इस लाभ के एवज में सेवा क्षेत्र के 1.6 प्रतिशत भाग की कीमत भी चुकाने को तैयार नहीं हैं? वास्तव में हमारे सामने ऐसे अनुभव हैं जहां लोग 10% क्षेत्र का नुकसान वहन करने को तैयार हो जाते हैं, बशर्ते कि शेष इलाके को न्यूनतम बुनियादी सेवा मिल जाए।

विकल्पों का खजाना

वास्तव में उक्त डूब को कम करने की विपुल सम्भावनाएं हैं। स्थानीय भण्डारण क्षमता के नियोजन में दो बातें गौरतलब होती हैं। पहली बात है ऐसे स्थल का चुनाव जहां न्यूनतम निर्माण और न्यूनतम डूब पैदा करके अधिकतम भण्डारण क्षमता हासिल हो सके। दूसरी बात जिस पर ध्यान देना होता है, यह है कि उस जलाशय से जुड़ा जलग्रहण क्षेत्र कैसा है तथा विश्वसनीयता के एक निर्धारित स्तर पर कितना भण्डारण अपेक्षित है। मसलन कई क्षेत्रों के लिए भण्डारण क्षमता 80 प्रतिशत विश्वसनीयता के आधार पर होती है तथा अर्ध सूखा क्षेत्रों में 50% विश्वसनीयता के आधार पर निर्मित होती है। वास्तव में अर्ध सूखा क्षेत्र में कई जगह पर अंततः जो क्षमता निर्मित होती है वह अपेक्षित पानी की मात्रा की सीमा में होती है।

परन्तु जब नर्मदा पानी मिलने की उम्मीद हो, तो स्थानीय क्षमता के निर्माण में यह सीमा बाधक नहीं होती। क्योंकि तब अतिरिक्त क्षमता की ज़रूरत स्थानीय पानी के उपयोग हेतु नहीं बल्कि बफर भण्डार के तौर पर होती है। इस वजह से उपयुक्त जगह के चुनाव में काफी संभावनाएं रहती हैं। हमारा अहसास है कि सौराष्ट्र व उत्तर गुजरात में ऐसी कई जगहें होंगी, जिनका इस्तेमाल आज पानी की उपलब्धता की सीमाओं के चलते नहीं किया जा रहा है। खासतौर से नहर मार्ग के रास्ते में पड़ने वाले नालों में या उनके आसपास ऐसी कई उपयुक्त जगहें मिलेंगी।

अर्थात हम इस अतिरिक्त क्षमता के निर्माण हेतु जगहों का चुनाव इस तरह कर सकते हैं कि भण्डारण की औसत गहराई 4 मीटर या उससे ज़्यादा रहे। यदि इस बात का ध्यान रखा जाएगा तो 10 लाख एकड़ फुट जल भण्डारण क्षमता के लिए कुल डूब को 25,000 हैक्टर से भी कम किया जा सकेगा। तब तो बांध के पीछे तथा स्थानीय डूब मिलाकर कुल डूब 35,800 हैक्टर के बीच रह जाएगी। यह मौजूदा सरदार सरोवर परियोजना की डूब के लगभग बराबर ही होगी।

डूब के स्थान परिवर्तन का महत्व

विकल्प को देखने का एक नज़रिया यह भी हो सकता है कि इसमें बांध के पीछे की 25,000 हैक्टर डूब की अदला-बदली 25,000 हैक्टर स्थानीय डूब से कर ली गई है। इस तरह की अदला-बदली का एक परिणाम यह होता है कि ऐसे लोगों या ऐसे गांवों की संख्या कम होती जाती है जिनकी पूरी ज़मीन डूब रही हो। दूसरे शब्दों में परियोजना की वजह से उजड़ने वालों की संख्या कम हो जाती है। वास्तव में बांध के पीछे इस तरह की बड़ी सकेन्द्रित डूब की वजह से लोग तो उजड़ते ही हैं, इकोसिस्टम भी बरबाद होती है।

इसके अलावा स्थानीय डूब के सन्दर्भ में परियोजना प्रभावित लोग कोई दूरस्थ अमूर्त इकाई नहीं रह जाते। यहां परियोजना प्रभावित लोग और परियोजना से लाभांवित लोग रोज़मर्रा के जीवन को साथ-साथ जीते हैं। एक ही पानी पीते हैं, एक ही बाज़ार में उठते-बैठते हैं, आपस में रिश्तों से बंधे होते हैं, त्यौहार साथ-साथ मनाते हैं, एक-दूसरे के सुख-दुख में साथ होते हैं। पुनर्वास के लिहाज़ से यह बहुत महत्वपूर्ण है। बांध के पीछे विशाल जलाशय में होने वाली डूब इससे बिल्कुल विपरीत होती है। यहां परियोजना प्रभावित लोग लाभांवितों की नज़र में एक अमूर्त, दूरस्थ इकाई होते हैं यानी बाहरी लोग होते हैं। आमतौर पर प्रभावितों और लाभांवितों का यह विभाजन समाज के साधन-संपन्न व कमज़ोर तबकों के विभाजन का ही दूसरा रूप होता है। आमतौर पर प्रभावित लोग आदिवासी एवं लाभांवित लोग गैर आदिवासी होते हैं। तब मामला यह हो जाता है कि एक समूह पूरा नुकसान वहन करता है और दूसरा समूह लाभ उठाता है। धीरे-धीरे यह एक निराशाजनक युद्ध में तब्दील हो जाता है। एक नियोजित परियोजना के खिलाफ संघर्ष में पूरी व्यवस्था आदिवासियों के खिलाफ तन जाती है। उनके नुकसान को 'राष्ट्र' या 'विकास' के हित के लिए 'अपरिहार्य' बताकर न्यायोचित ठहराने की कोशिश होती है।

वास्तव में यह बात भी गौरतलब है कि किसी भी इकोसिस्टम में सतही जलाशय जल भण्डारों का मात्र एक प्रकार हैं। यदि हम पूरी इकोसिस्टम को देखें तो इसमें सतही भण्डार होते हैं, सतह के नीचे के भण्डार होते हैं तथा एक अन्य प्रकार के भण्डार, जिन्हें हम स्तंभ भण्डार कहते हैं, के अन्तर्गत बायोमास जल भण्डार होते हैं। हम इन विभिन्न भण्डारों के परस्पर सम्बंधों को किस रूप में समझते हैं और इनके अनुपात का प्रबन्धन किस रूप में करते हैं, इसी पर इकोसिस्टम की प्रकृति निर्भर करती है।

मिट्टी सुधार, मिट्टी निर्माण, स्थायी पर्णाच्छादन तथा मल्च और वृक्षों के विभिन्न ऊंचाई स्तरों का प्रबन्धन जैसे उपाय In situ नमी धारण क्षमता को काफी बढ़ा सकते हैं। इन्हीं उपायों से मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता भी बढ़ती है और इस प्रकार से मिट्टी में सुधार का सकारात्मक फीडबैक चक्र शुरू हो जाता है। इन्हीं उपायों से भूजल बहाली भी बढ़ती है। यदि इस भूजल का प्रबन्धन ठीक ढंग से व सामूहिक रूप से किया जाए तो यह सिंचाई का समुचित स्रोत बन सकता है। स्तम्भ भण्डार अथवा बायोमास भण्डार एक भिन्न किस्म की अवधारणा है। इससे पता चलता है कि कितने पानी का उत्पादक इस्तेमाल हुआ है तथा उसे बायोमास में तब्दील कर दिया गया है। स्तम्भ भण्डार का अनुपात बढ़ाने का मतलब है कि पानी का त्वरित इस्तेमाल करके बायोमास का उत्पादन जिसके लिए आमतौर पर पहले पानी संग्रह किया जाता है और फिर उपयोग करके वहीं बायोमास पैदा किया जाता है। अर्थात् पानी को संग्रह करने की बजाय हम इसे तत्काल बायोमास में तब्दील कर दे रहे हैं। बायोमास का भण्डारण, चाहे सीधे पेड़ों के रूप में या विभिन्न उत्पादों के रूप में, कहीं ज़्यादा आसान है।

दरअसल यदि हम विभिन्न भण्डारण प्रणालियों के परस्पर सम्बंधों को समझ लें, तो समुचित प्रबन्धन के ज़रिये सतही भण्डार की ज़रूरत को न्यूनतम किया जा सकता है। परन्तु इसके लिए फसल चक्र और पानी पर अधिकार एवं अतौर सामूहिक संसाधन पानी के नियमन के तौर तरीकों में बुनियादी परिवर्तन करना होंगे। पारम्परिक प्रथाओं में इस तरह के प्रबन्धन के कई तत्व मौजूद हैं। ज़रूरत इस बात की है कि किसानों की भागीदारी से प्रयोगों की एक प्रक्रिया चले, पारम्परिक प्रथाओं में से ऐसी प्रबन्धन विधियां खोजी जाएं, आधुनिक ज्ञान के सामंजस्य के साथ इन्हें अपनाया जाए, और तब इन्हें बदले हुए सामाजिक व पर्यावरणीय सन्दर्भ में लागू किया जाए। यह एक बहुत विशाल काम है और धीरे-धीरे ही होगा। इसलिए हमने सतही जल भण्डारों के बारे में कोई निहायत बुनियादी बदलाव की बात नहीं की है। अलबत्ता यह कह देना ज़रूरी है कि समुचित इकोसिस्टम प्रबन्धन के ज़रिये सतही भण्डारण की ज़रूरत को काफी कम करना संभव है।

केन्द्रीय परिवहन तंत्र की पुनर्रचना की लागत

हालांकि हमारी पुरज़ोर कोशिश है कि अभी तक जितना काम हो चुका है उसका यथासंभव अधिकतम इस्तेमाल कर लें मगर यह संभव नहीं है कि व्यय की जा चुकी समूची लागत को बचाया जा सके। उदाहरण के लिए, मही नदी तक 1000 क्यूमेक की जो विशाल नहर लगभग पूरी तैयार हो चुकी है उसकी लागत बेकार जाएगी (यह नहर इतनी बड़ी है कि नर्मदा के औसत मानसूनी बहाव का आधा भाग यहां से वहां पहुंचा सकती है)। दरअसल स्थिति यह है कि इस परियोजना पर पुनर्विचार को जितना टाला जाएगा उतनी ही ऐसी डूब खाते की लागत बढ़ती जाएगी जिसे किसी भी विकल्प में समंजित करना संभव न होगा। इन सारे खर्चों को डूब खाते में डालना होगा और यह उम्मीद करनी होगी कि इससे सीखा गया सबक भावी परियोजनाओं के नियोजन में काम आएगा।

बांध की लागत

यदि मूल डिज़ाइन में बांध की आधारभूत ऊंचाई 90 मीटर तथा पूर्ण जलाशय स्तर 107 मीटर रखा गया होता तो बांध की लागत काफी कम आती, क्योंकि उस स्थिति में नींव आदि के काम में काफी बचत होती। वैसे भी आमतौर पर बांध की कुल लागत उसकी ऊंचाई के वर्ग के अनुपात में आती है। यदि हम 138 मीटर ऊंचे बांध की अनुमानित लागत 1550 करोड़ रुपए मानें, तो ज़ाहिर है कि वैकल्पिक डिज़ाइन के अनुसार बांध बनाने पर उसकी लागत 900 करोड़ रुपए से थोड़ी ज़्यादा बैठती।

परन्तु फिलहाल नींव, बुनियाद की चौड़ाई आदि का निर्माण कार्य मूल 138 मीटर के हिसाब से पूरा हो चुका है, इसलिए बांध की लागत में इतनी ज़्यादा बचत की उम्मीद नहीं की जानी चाहिए। हमारा अनुमान है कि अब जो लागत होगी वह बांध की ऊंचाई में कमी के अनुपात में होगी यानी 107/138 बराबर 77 प्रतिशत। यदि हम वैकल्पिक बांध की लागत को मूल बांध की लागत का 80 प्रतिशत मानें, तो वैकल्पिक बांध की लागत लगभग 1200 करोड़ रुपए आएगी।

मुख्य फीडर नहर नेटवर्क की लागत

हम शुरू में ही स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि यहां लागत की जो गणना की गई है वह उस केन्द्रीय फीडर तंत्र की है जो पानी को स्थानीय भण्डारों तक पहुंचाएगा। इसमें समूचे वितरण तंत्र की लागत शामिल नहीं है। स्थानीय तंत्र की लागत की गणना अलग से खण्ड 2 में की गई है। इसलिए हम पाठकों को आगाह कर देना चाहते हैं कि यहां प्रस्तुत लागत की सीधी

तुलना मूल स.स.प्र. नहर तंत्र की लागत से करना उचित न होगा क्योंकि मूल स.स.प्र. नहर तंत्र की लागत में स्थानीय वितरण तंत्र की लागत भी शामिल है।

जैसा कि हमने पूर्व में ज़िक्र किया था फीडर नहर मार्ग के कई विकल्प मौजूद हैं। फीडर नहर तंत्र की योजना बनाते हुए हमने वह तरीका अपनाया है जिससे हमें लचीलापन हासिल हो। यह तरीका हमारे 'उच्चतम लागत' के तरीके से मेल खाता है। इसमें बाद में कमी बेशी की स्वतंत्रता है। हमने लागत की गणना पलस्तर युक्त नहरों के आधार पर की है हालांकि हमें यकीन है कि कई इलाकों में पलस्तर का खर्च बचाया जा सकता है। खासतौर से उन इलाकों में पलस्तर का कोई अर्थ नहीं है जहां बाहरी पानी का मुख्य इस्तेमाल भूजल के पुनर्भरण हेतु किया जाना है।

जैसा कि विकल्प में आम तौर पर किया गया है, उसी तरह यहां भी टेक्नॉलॉजी का चुनाव इस आधार पर किया गया है कि कार्यक्षमता या कामकाज को प्रभावित किए बगैर, स्थानीय आमदनी अधिकतम हो। डिज़ाइन की एक और विशेषता यह है कि इसे चरणबद्ध निर्माण के अनुरूप ढाला जा सकता है और नहर की क्षमता में क्रमशः वृद्धि की जा सकती है। इससे फायदा यह होगा कि पानी वितरण के लिए निर्माण कार्य पूरा होने का इंतज़ार नहीं करना पड़ेगा। चूंकि ये नहरें स्थानीय श्रम पर निर्भर हैं इसलिए एक साथ कई जगह पर काम शुरू किया जा सकता है, बशर्ते कि नर्मदा पानी प्राप्त करने के लिए ज़रूरी संस्थागत व्यवस्था पूरी हो चुकी हो। इनकी बातचीत खण्ड 2 में की गई है।

मुख्य फीडर नहर तंत्र की हमारी कल्पना निम्नानुसार है :

(क) सौराष्ट्र के लिए एक मुख्य फीडर जो पानी को चक्राकार (garland) नहर तक पहुंचाएगी – नहर मुख पर 300 क्यूमेक डिस्चार्ज, लम्बाई 200 कि.मी. (60,000 क्यूमेक-कि.मी.)।

(ख) सौराष्ट्र के लिए गर्डल नहर – नहर मुख पर 300 क्यूमेक, औसत डिस्चार्ज 2/3, लम्बाई 500 कि.मी. (1,00,000 क्यूमेक कि.मी.)।

(ग) मही के आगे उत्तर गुजरात फीडर – नहर मुख पर 360 क्यूमेक डिस्चार्ज, औसत डिस्चार्ज 2/3, लम्बाई 250 कि.मी. (60,000 क्यूमेक कि.मी.)।

(घ) कच्छ चक्राकार (garland) फीडर – नहर मुख पर डिस्चार्ज 100 क्यूमेक, औसत डिस्चार्ज 2/3, लम्बाई 200 कि.मी. (13,000 क्यूमेक कि.मी.)।

(च) आम फीडर (यह फीडर एक अतिरिक्त व्यवस्था है जिसका उपयोग अपस्ट्रीम जलाशयों की ज़रूरत पूरी करने या कच्छ व सौराष्ट्र को मही या गरुड़ेश्वर के उच्च स्तर से पानी पहुंचाने का वैकल्पिक मार्ग उपलब्ध करवाने के लिए भी हो सकता है) – 100 क्यूमेक औसत डिस्चार्ज, लम्बाई 300 कि.मी. (30,000 क्यूमेक कि.मी.)।

ज़ाहिर है कि नहर तंत्र का अतिरिक्त प्रावधान (overdesign) किया गया है। इसमें विभिन्न विकल्पों में से चुनने की स्वतंत्रता है तथा लागत में कमी की भी गुंजाइश मौजूद है।

प्रत्येक फीडर नहर के साथ 42 कि.मी. लम्बी शाखा फीडर है जिसकी क्षमता 25 क्यूमेक तक पहुंच जाएगी। लागत की गणना इस तंत्र के आधार पर की गई है।

मुख्य फीडर नहर तंत्र में कुल क्यूमेक कि.मी.

= 60,000 + 100,000 + 60,000 + 13,000 + 30,000

= 2,63,000 क्यूमेक कि.मी.

कुल 920 क्यूमेक औसत डिस्चार्ज को 42 कि.मी. की शाखा नहरों में छोड़ा जाएगा।

शाखा फीडर का कुल क्यूमेक कि.मी. =

= (300 + 360 + 100 + 100) क्यूमेक x 42 कि.मी.

= 920 क्यूमेक x 42 कि.मी.

= लगभग 40,000 क्यूमेक कि.मी.

कुल नहर तंत्र = 2,63,000 + 40,000 क्यूमेक कि.मी.

= 3,03,000 क्यूमेक कि.मी.

नहर की लागत की गणना के लिए हमने माना है कि प्रति क्यूमेक कि.मी. लागत 50,000 रुपए आएगी।

नहर की कुल अनुमानित लागत = 3,03,000 x 50,000 रुपए = 1515 करोड़ रुपए

यदि इसमें 20 प्रतिशत की गुंजाइश और रखना चाहें तो फीडर नहर तंत्र की लागत 1800 करोड़ रुपए मानी जा सकती है।

बराजों की लागत

दाते का अनुमान है कि भरुच बराज की लागत 240 करोड़ रुपए होगी। कच्छ को पानी पहुंचाने वाली बराज इसके मुकाबले छोटी है तथा यहां पर पानी की कम मात्रा को लिफ्ट किया जाना है। हमारा अनुमान है कि इसकी लागत भरुच बराज की तिहाई होगी। इस आधार पर कच्छ व सौराष्ट्र को पानी पहुंचाने वाली बराजों की कुल लागत 320 करोड़ रुपए आएगी।

कच्छ-सौराष्ट्र लिफ्ट हेतु पम्प की लागत

कच्छ व सौराष्ट्र हेतु पानी लिफ्ट करने के लिए पम्प की कुल क्षमता 475 मेगावॉट आंकी गई है। पम्प की लागत आमतौर पर 5000 रुपए प्रति किलोवॉट क्षमता आती है। परन्तु कच्छ-सौराष्ट्र लिफ्ट हेतु हमें हेवी ड्यूटी पम्प की ज़रूरत होगी जिनकी कार्यक्षमता ज़्यादा हो। साथ में काफी सारा निर्माण कार्य भी करना होगा। लिहाज़ा हमने पम्प की लागत 12,000 रुपए प्रति किलोवॉट क्षमता लगाई है। इस दर पर पम्प का खर्च 570 करोड़ रुपए होगा।

नए स्थानीय पानी भण्डारों की लागत

हमने माना है कि 10 लाख एकड़ फुट यानी 12500 लाख घन मीटर नई स्थानीय भण्डारण क्षमता निर्मित करनी होगी। हमने इसकी लागत 5 रुपए प्रति घन मीटर मानी है। महाराष्ट्र में इस सम्बंध में विभागीय मानक 1.5 लाख रुपए प्रति 30,000 घन मीटर है। हमारा आंकड़ा इससे मेल खाता है। इस दर से नए स्थानीय भण्डारों की कुल लागत 625 करोड़ रुपए होगी।

नहर मार्ग का एक विकल्प : सूखा ग्रस्त इलाकों को जल्द पानी देने की कोशिश

हाल ही में गुजरात के कुछ विशेषज्ञों तथा कार्यकर्त्ताओं से चर्चाओं के दौरान नहर मार्ग के संशोधन को लेकर कुछ महत्वपूर्ण सुझाव मिले हैं, जिनकी बदौलत केन्द्रीय परिवहन तंत्र की लागत में उल्लेखनीय कमी आ सकती है और कच्छ, सौराष्ट्र व उत्तर गुजरात को अपेक्षाकृत जल्दी पानी मिल सकता है। इन इलाकों को यदि जल्दी पानी मिल सके तो यह एक महत्वपूर्ण बात होगी। लिहाज़ा हम यह प्रस्ताव यहां अलग से प्रस्तुत कर रहे हैं। इस प्रस्ताव की विशेषता यह है कि इसमें गुजरात के सूखा ग्रस्त इलाकों को पांच वर्ष के अन्दर पानी मिलने लगेगा और भाल क्षेत्र के विकास के सर्वथा नए आयम खुल जाएंगे।

हमारे मूल प्रस्ताव में भरुच के आगे बराजों की शृंखला बनाना शामिल था। संशोधित विकल्प में यह शृंखला निरस्त हो जाएगी। इसकी बजाय कच्छ व सौराष्ट्र को आवंटित पानी मुख्य नहर में ही मही नदी तक बहेगा। यहां से इस पानी को थोड़ी दूरी पर स्थित शेढ़ी नदी में पहुंचा दिया जाएगा जो साबरमती की सहायक नदी है। साबरमती पर अपेक्षाकृत कम ऊंचे स्थान पर एक बराज बनाया जाएगा। इस बराज से पानी को पठारी पट्टी में मोड़ा जाएगा। यहां से पानी को पम्प करके कच्छ व सौराष्ट्र की चक्राकार नहर में डाला जाएगा (नक्शा 2) । इस कार्य के लिए चरणों में पानी को थोड़ा-थोड़ा लिफ्ट करना होगा। जिस अवधि में नर्मदा पानी की मात्रा सौराष्ट्र व कच्छ के आवंटन से ज़्यादा होगी, उस समय इस पानी को खम्भात की खाड़ी के नज़दीक भाल क्षेत्र से उत्तर-दक्षिण में कच्छ के रण तक फैले सपाट क्षेत्र में भण्डारित किया जाएगा। इस प्रस्ताव के तहत कच्छ व सौराष्ट्र दोनों की चक्राकार नहरें लगभग 25 मीटर की ऊंचाई पर होंगी। स्थानीय तंत्र को पानी पहुंचाने का काम चरणबद्ध ढंग से पवन ऊर्जा के विकास से जुड़ा है, ताकि इस क्षेत्र में उपलब्ध विपुल पवन ऊर्जा का उपयोग किया जा सके। वर्तमान मही तंत्र में नर्मदा का पानी मिलने से उत्तर गुजरात के लिए उतनी ही मात्रा में पानी कड़ाना से लिया जा सकेगा। इसका उपयोग करने हेतु कड़ाना से एक उच्च स्तरीय पलस्तरहीन नहर बनाई जाएगी। इससे भूजल पुनर्भरण होगा। इसी प्रकार की एक नहर साबरमती से भी बनेगी। इस संशोधित प्रस्ताव से लागत में तो कमी आएगी ही, साथ में निर्माण कार्य का आकार

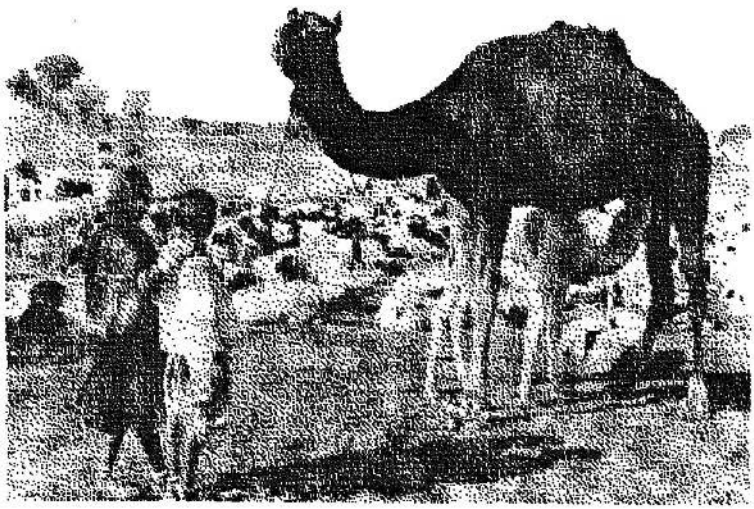

भी उतना विशाल नहीं रहेगा। यह काम स्थानीय कामगारों के साथ शुरू किया जा सकता है। इससे कच्छ, सौराष्ट्र व उत्तर गुजरात को जल्दी पानी दिया जा सकेगा।

चक्राकार नहरों तक मुख्य फीडर नहर में संशोधन

संशोधित प्रस्ताव में मही तक बनाई जा चुकी मुख्य नहर की उच्च क्षमता का लाभ उठाया जाएगा। वर्तमान मुख्य नहर जहां मही से जुड़ती है वह स्थान शेढी नदी के काफी करीब है। लिहाज़ा शेढ़ी तक पानी पहुंचाने का काम काफी कम खर्च में, काफी कम समय में पूरा किया जा सकता है।

आवंटित पानी को बराज से लिफ्ट करने का काम 5-5 मीटर के चरणों में किया जाएगा। अतिरिक्त पानी को खम्भात की खाड़ी के भाल क्षेत्र से लेकर कच्छ के छोटे रण तक फैले सपाट क्षेत्र में मोड़ा जाएगा। इस क्षेत्र में ढलान बहुत कम है तथा ऊंचाई 10 मीटर के आसपास है। अधिकांश भूमि लवणीयता की वजह से बंजर है तथा कृषि के अनुपयुक्त है। संशोधित योजना में इस क्षेत्र में अस्थाई भण्डार निर्मित करने का प्रस्ताव है। सपाट सतह की बदौलत यह क्षेत्र भण्डारण जलाशय निर्मित करने के लिए अनुकूल है। हमारा अनुमान है कि हमने 5 रुपए प्रति घन मीटर की जो लागत मानी है, यहां लागत उससे कम ही आएगी। बहरहाल हम यहां भी लागत 5 रुपए प्रति घन मीटर ही मानकर चलेंगे। इसके आगे भी, खासकर कच्छ मार्ग पर, कई जलाशय हैं (मसलन नल सरोवर) जिनका उपयोग अस्थाई भण्डारण हेतु किया जा सकता है। परन्तु उच्चतम लागत गणना के अपने तरीके के अनुरूप हम इन भण्डारों को अनदेखा करके चलेंगे।

यह ध्यान रखना अनिवार्य है कि यहां हम मात्र अस्थाई भण्डारण की बात कर रहे हैं — जिनमें पानी भण्डारण की अवधि अधिकतम दो महीने होगी। यह बिन्दु महत्व रखता है क्योंकि इस इलाके की खारी मिट्टी किसी दीर्घावधि भण्डारण को खारा बना देती है। मगर साथ ही यह जानना भी महत्वपूर्ण है कि पानी को खारा होने में समय लगता है - मसलन बारिश के दौरान जो मीठा पानी इकट्ठा होता है वह दिसम्बर-जनवरी तक बहुत खारा नहीं हो पाता। लवणीकरण की प्रक्रिया बाद में ज़्यादा तेज़ी से होती है, जब तेज़ धूप पड़ती है। लिहाज़ा हम जितने समय भण्डारण की बात कर हैं, उस दौरान लवणीयता बहुत ज़्यादा नहीं बढ़ेगी। यह मुमकिन है कि हमें कुछ हद तक अप्रयुक्त भण्डारण क्षमता (डेड स्टोरेज) की ज़रूरत होगी।

ये भण्डार सपाट पट्टी में दक्षिण से उत्तर तक फैले होंगे। सौराष्ट्र की चक्राकार नहर अब सही मायने में चक्राकार नहीं है। अब इसके दो खण्ड हैं - एक दक्षिणी और दूसरा उत्तरी। हम दो फीडर नहरें प्रस्तावित कर रहे हैं जो प्रत्येक 100 किलोमीटर की होगी। उत्तरी खण्ड की फीडर की क्षमता 200 क्यूमेक तथा दक्षिणी खण्ड की फीडर की क्षमता 100 क्यूमेक होगी। कच्छ की फीडर आंशिक रूप से सौराष्ट्र की उत्तरी फीडर के साथ जोड़ी जा सकती है। हम कच्छ चक्राकार नहर हेतु 100 क्यूमेक की 100 कि.मी. लम्बी फीडर नहर का प्रावधान रख रहे हैं। यह भी 50-50 क्यूमेक के दो खण्डों के रूप में देखी जा सकती है।

सौराष्ट्र व कच्छ की चक्राकार नहर

संशोधित योजना में सौराष्ट्र चक्राकार नहर दो खण्डों से मिलकर बनी है। उत्तरी खण्ड को साबरमती के मुहाने के उत्तरी छोर से पानी दिया जाएगा जबकि दक्षिणी खण्ड को दक्षिणी छोर से। उत्तरी खण्ड सौराष्ट्र के उत्तरी तट का चक्कर

लगाकर पश्चिमी तट के करीब मध्य बिन्दु की ओर मुड़ेगा। इस खण्ड की एक शाखा पर हमने प्रावधान रखा है कि पानी को 75 मीटर की ऊंचाई तक लिफ्ट किया जाए और फिर इसे गुरुत्व के ज़रिये 25 मीटर की ऊंचाई तक बहने दिया जाए। शेष 'चक्राकार' नहर का शेष भाग दक्षिणी खण्ड है। हमारा मानना है कि सौराष्ट्र के आवंटन का एक-चौथाई भाग दक्षिणी खण्ड में तथा शेष तीन-चौथाई उत्तरी खण्ड में जाएगा। उत्तरी खण्ड का एक-चौथाई पानी 75 मीटर लिफ्ट वाली शाखा में भेजा जाएगा। कच्छ चक्राकार नहर अब 25 मीटर की ऊंचाई पर रहेगी। अभी भी कच्छ व सौराष्ट्र का बड़ा क्षेत्र चक्राकार नहरों से 20 से 60 कि.मी. के दायरे में रहेगा तथा अधिकतम लिफ्ट 75 मीटर रहेगा। इसका प्रावधान हमने स्थानीय तंत्र व वितरण प्रणाली में रखा है।

उत्तर गुजरात की उच्च स्तरीय पुनर्भरण नहर

उत्तर गुजरात की पुनर्भरण नहर कड़ाना से उत्तर-पश्चिम में 100 कि.मी. की है और इसी प्रकार की एक नहर साबरमती से 50 कि.मी. की है। नहर मुख पर 100 क्यूमेक डिस्चार्ज का प्रावधान है। चूँकि यह पुनर्भरण नहर है इसलिए इसे अधिकतर पलस्तरहीन रखा जाएगा, मात्र चुनिंदा भाग ही पलस्तर-युक्त होंगे। इसकी बदौलत इस नहर का निर्माण भी स्थानीय श्रम से कर के जल्दी ही इसका संचालन शुरू हो सकता है।

लागत

आइए इस संशोधित व्यवस्था की लागत पर गौर करें।

बराजों की लागत

मूल विकल्प में भरूच व कच्छ बराज की लागत का अनुमान 320 करोड़ रुपए का था। संशोधित विकल्प में हमें या तो मही या साबरमती पर एक ही स्थान पर बराजों की ज़रूरत होगी। हमारा अनुमान है कि बराजों की लागत 80 करोड़ रुपए से ज़्यादा नहीं होनी चाहिए।

फीडर नहर तंत्र की लागत

(क) मूल विकल्प में सौराष्ट्र चक्राकार नहर की फीडर नहर की क्षमता 300 क्यूमेक तथा लम्बाई 200 कि.मी. थी। यानी नहर 60,000 क्यूमेक-कि.मी. की थी। अब 100-100 कि.मी. की दो फीडर नहरें लगेंगी जिनकी क्षमता 100 व 200 क्यूमेक होगी। यानी कुल 30,000 क्यूमेक-कि.मी. की नहरें होंगी।

(ख) सौराष्ट्र की चक्राकार नहर पहले 300 क्यूमेक नहर मुख डिस्चार्ज क्षमता की 500 कि.मी. लम्बी नहर थी यानी कुल 1,00,000 क्यूमेक-कि.मी. की नहर थी। अब दो खण्ड हैं, एक 150 कि.मी. लम्बी 100 क्यूमेक नहर मुख डिस्चार्ज वाली तथा दूसरी 450 कि.मी. लम्बी 200 क्यूमेक नहर मुख डिस्चार्ज वाली। यानी कुल नहर 70,000 क्यूमेक-कि.मी.।

(ग) उत्तर गुजरात की मुख्य फीडर नहर यथावत है – 360 क्यूमेक नहर मुख डिस्चार्ज, 250 कि.मी. लम्बी यानी 60,000 क्यूमेक-कि.मी.।

(घ) कच्छ चक्राकार फीडर यथावत है। 100 क्यूमेक नहर मुख डिस्चार्ज, 200 कि.मी. लम्बी यानी 13,333 क्यूमेक-कि.मी. (लगभग 14,000 क्यूमेक-कि.मी.)। अलबत्ता अब बराज से कच्छ के लिए मुख्य फीडर नहर 100 कि.मी. लम्बी

होगी जिसका स्थिर डिस्चार्ज 100 क्यूमेक होगा। यानी यह 10,000 क्यूमेक-कि.मी. की नहर होगी।

(च) पूर्व में हमने एक अतिरिक्त सामान्य फीडर नहर का प्रावधान किया था जो या तो गरुड़ेश्वर से शुरू होती या एक उच्च स्तरीय पुनर्भरण नहर होती। यह 300 कि.मी. लम्बी थी तथा इसका औसत डिस्चार्ज 100 क्यूमेक था। इसके एवज में अब एक 150 कि.मी. लम्बी उच्च स्तरीय पुनर्भरण नहर है जिसका नहर मुख डिस्चार्ज 100 क्यूमेक है। यानी इसकी कुल क्षमता 10000 क्यूमेक कि.मी. है। परन्तु चूंकि यह पलस्तरहीन नहर है इसलिए इसकी लागत आम लागत का 60% मान सकते हैं। यानी लागत की गणना में इसे हम 6000 क्यूमेक-कि.मी. गिन सकते हैं।

42 कि.मी. लम्बी शाखा नहरों की क्षमता हम पूर्वानुसार यानी 40,000 क्यूमेक-कि.मी. ही मान रहे हैं।

यानी फीडर नहर नेटवर्क का कुल क्यूमेक-कि.मी. 70,000 + 60,000 + (14,000+10,000) + 6,000 + 40,000 = 2,00,000 क्यूमेक-कि.मी. आता है।

अतः फीडर नहर नेटवर्क की लागत

2,00,000 क्यूमेक- कि.मी. x 50,000 रुपए प्रति क्यूमेक-कि.मी. = 1000 करोड़ रुपए आती है।

इसमें यदि 20% की और गुंजाइश जोड़ दें तो फीडर नहर नेटवर्क की लागत 1200 करोड़ रुपए होगी।

पम्प की लागत

पानी लिफ्ट करने में कुल ऊर्जा खर्च 7000 लाख युनिट और पॉवर खर्च 240 मेगावॉट आता है। हेवी ड्यूटी पम्प तथा निर्माण कार्य की लागत 12,000 रुपए प्रति किलोवॉट की दर से 288 करोड़ रुपए अर्थात लगभग 300 करोड़ रुपए आती है।

सपाट ज़मीन पर अतिरिक्त भण्डारण की लागत

नई अतिरिक्त भण्डारण क्षमता विकसित करने की लागत पूर्व में 5 रुपए प्रति घन मीटर लगाई गई थी। 10 लाख एकड़ फुट अतिरिक्त क्षमता निर्मित करने की लागत 625 करोड़ रुपए आंकी गई थी। अब हमें सपाट मैदान में अतिरिक्त बफर भण्डारण क्षमता निर्मित करने की लागत की गणना करनी होगी। इसके लिए पहले पानी प्रदाय चक्र पर गौर करना होगा। हम यह मानकर चलेंगे कि प्रदाय चक्र 160 दिनों का होगा। इसमें से बाद के 80 दिनों में पानी प्रदाय आधी दर पर होगा। यानी सौराष्ट्र व कच्छ की अनुमानित 300 व 100 क्यूमेक से आधी दर पर। प्रदाय चक्र के पहले 80 दिनों में बफर भण्डारों के आकार का कोई बहुत महत्व नहीं है। परन्तु अन्तिम 80 दिनों में यह बहुत निर्णायक है। उच्चतम लागत के तरीके के अनुरूप हम इन अन्तिम 80 दिनों के पूरे पानी हेतु बफर भण्डार का प्रावधान करेंगे। यह पानी सौराष्ट्र व कच्छ के कुल आवंटन (24 लाख एकड़ फुट + 8 लाख एकड़ फुट = 32 लाख एकड़ फुट) का एक-तिहाई यानी करीब 10 लाख एकड़ फुट होगा। यानी इन भण्डारों के निर्माण भी लागत करीब 625 करोड़ रुपए आएगी।

यहां भी हम यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि वास्तविक लागत शायद इससे काफी कम होगी। पहली बात तो यह है कि सपाट सतह की वजह से निर्माण कार्य कम करना होगा। दूसरी बात यह है कि पूरे मार्ग में स्थित मौजूदा भण्डारों का इस्तेमाल भी किया जाएगा।

संशोधन के बाद लागत में बचत

	मद	पूर्व में अनुमानित लागत	संशोधन के बाद लागत
(क)	नहर तंत्र	1800 करोड़	1200 करोड़
(ख)	बराज	320 करोड़	80 करोड़
(ग)	पम्प लागत	570 करोड़	300 करोड़
(घ)	नई भण्डारण क्षमता	625 करोड़	1250 करोड़
	कुल	3315 करोड़ रुपए	2935 करोड़ रुपए

यानी संशोधन के बाद लागत में 400 करोड़ की बचत होगी। और यदि मौजूदा भण्डारण क्षमता का भी उपयो किया जाए तथा आधी क्षमता निर्मित करने का खर्च बचा लिया जाए तो लागत में करीब 300 करोड़ रुपए की औ बचत हो सकती है।

बांध की कम ऊंचाई पर ही कच्छ, सौराष्ट्र व उत्तर गुजरात को पानी

यह संशोधन अहम पक्ष है। मूल सरदार सरोवर परियोजना में इन इलाकों को पानी, जो वैसे ही बहुत कम कमान के अन्तिम छोर से मिलता है। यानी इन इलाकों को पानी मिलना तभी शुरू होगा जब विशाल नेटवर्क पूरी त

बन जाए और काम करना शुरू कर दे। यदि सब कुछ योजना के मुताबिक चला, तो भी कच्छ व सौराष्ट्र को पानी मिलना 15-25 साल बाद ही शुरू हो पाएगा। इसी वजह से मूल स.स.प. में इन इलाकों को पानी तब तक नहीं मिल पाएगा जब तक कि बांध की ऊंचाई 139 मीटर (यानी पूर्ण जलाशय स्तर के करीब) न पहुंच जाए।

हमारे मूल विकल्प में इस समस्या को पूरी तरह नहीं सुलझाया जा सका था। हां, मूल विकल्प में यह ज़रूर सुनिश्चित किया गया था कि मानसूनी बहाव का इस्तेमाल करके तथा स्थानीय भण्डारों को भरकर 107 मीटर पूर्ण जलाशय स्तर पर ही गुजरात के पूरे आवंटन का उपयोग करना सम्भव है। भरुच बराज के ज़रिये सौराष्ट्र पानी पहुंच को मुख्य नहर से स्वतंत्र कर दिया गया था। गरुड़ेश्वर मार्ग से यही स्थिति कच्छ के लिए भी सम्भव थी। परन्तु दोनों मामलों में पानी प्रदाय शुरू करने से पूर्व विशाल पैमाने पर निर्माण कार्य करना होता। साबरमती या मही बराज दोनों ही भरुच बराज से छोटे हैं और काफी जल्दी तैयार किए जा सकते हैं। इसकी बदौलत इन इलाकों को पानी प्रदाय करने हेतु ज़रूरी निर्माण कार्य में भारी कमी हो जाएगी। परिणामस्वरूप इन इलाकों को लगभग मध्य गुजरात के साथ ही पानी मिलना शुरू हो सकेगा। यानी गुजरात के सभी इलाकों को एक साथ पानी मिलने लगेगा।

अनुत्पादक संसाधनों का विकास व इस्तेमाल

इस संशोधन की वजह से सपाट पट्टी के लिए भी नई संभानाएं खुल जाती हैं। पहली चीज़ – इस पट्टी की फालतू ज़मीन का इस्तेमाल अस्थाई भण्डारण हेतु करने का फायदा यह होगा कि भण्डारण के लिए उत्पादक भूमि का इस्तेमाल कम से कम होगा। दूसरी चीज़ - भण्डारण स्थलों पर जो अवशिष्ट पानी होगा वह उस क्षेत्र में एक पड़त भूमि विकास कार्यक्रम का आधार बन जाएगा। इन भण्डारों के पानी का इस्तेमाल **प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा** जैसे लवण-सह प्रजातियां उगाने के लिए हो सकता है। इससे टिकाऊ ढंग से बायोमास पैदा होगा तथा मिट्टी की गुणवत्ता में भी सुधार होगा। तीसरी चीज़ - इस पानी से इस इलाके में ज़रूरी flushing भी किया जा सकेगा। और अन्तिम चीज़ - इस पानी की बदौलत ऐसी रचनाएं बनाई जा सकेंगी जिनमें मत्स्य पालन व बायोमास उत्पादन साथ-साथ हो सकता है।

अवरोध को समाप्त करने की सम्भावना

परियोजना को लेकर जो विवाद है उसे सुलझाने की दिशा में यह संशोधित प्रस्ताव काफी कारगर साबित हो सकता है। यह बात कई बार उठी है कि स.स.प. बांध को 139 मीटर की ऊंचाई तक ले जाना विवेकपूर्ण न होगा। मध्यप्रदेश सरकार बांध ऊंचाई में वृद्धि को लेकर चिंतित है। इस वजह से गुजरात में ऐसी शंकाएं पैदा हो रही हैं कि शायद यह परियोजना ऐसी जगह जाकर रुक जाएगी कि पानी या तो बिलकुल नहीं मिलेगा या बहुत थोड़ा मिलेगा। इस तरह की शंकाएं गुजरात के सूखा ग्रस्त क्षेत्रों में ज़्यादा हैं क्योंकि उन्हें पहले ही थोड़ा-सा हिस्सा मिला है और वह भी खतरे में है। इसीलिए परियोजना पर पुनर्विचार को लेकर गुजरात में आक्रोश है।

प्रस्तावित संशोधन इस समस्या का एक समाधान है। रास्ता यह है कि पहले चरण में बांध की ऊंचाई इतनी मान ली जाए कि 90 मीटर से निकली मुख्य नहर में पानी छोड़ा जा सके। इसके साथ जुड़े सारे निर्माण कार्य पूरे कर लिए जाएं और सारे इलाकों को पानी देना शुरू कर दिया जाए। इसके बाद पुनर्विचार की प्रक्रिया पूरी गंभीरता से की जाए।

नतीजा यह होगा कि सारे सम्बंधित पक्षों को थोड़ी सांस लेने की फुरसत मिलेगी और गुजरात के सूखाग्रस्त क्षेत्रों में व्याप्त शंकाएं भी कम होंगी। तब इस बात पर गम्भीरता से विचार किया जा सकता है कि बांध की ऊंचाई बढ़ाएं या नहीं। तब पुनर्विचार में जल्दबाज़ी किए बगैर सारे पहलुओं पर समग्रता से विचार किया जा सकेगा।

पहले खण्ड का पुनरावलोकन

यहां हम प्रथम खण्ड का समापन करेंगे। इस चरण में हमने मूलतः केन्द्रीय परिवहन तंत्र की पुनर्रचना का प्रस्ताव रखा। इस खण्ड में हम पानी के उपयोग के तरीकों, फसल चक्र, पानी के अधिकार, पानी प्रदाय या वितरण की प्रणाली आदि मुद्दों पर कुछ भी मानकर नहीं चले थे। हम इन मुद्दों तथा उनसे जुड़ी लागत की चर्चा अगले दो खण्डों में करेंगे। विकल्प का पूरा चित्र उस चर्चा के बाद ही सामने आएगा। अगले खण्ड में पानी के पुनरुत्पादक व समतामूलक उपयोग पर चर्चा की जाएगी तथा तीसरे खण्ड में ऊर्जा के मुद्दे को उठाया जाएगा। इन दोनों ही मुद्दों पर इस खण्ड में हमने कुछ भी मान्यता नहीं रखी थी। मान लीजिए कि हम यहीं पर रुक जाएं, तो क्या परिणाम हासिल होगा? क्या केन्द्रीय परिवहन तंत्र की पुनर्रचना से कोई उल्लेखनीय लाभ होगा?

यदि ऐसा किया जाए तो स्थानीय जल भण्डारों के इर्द-गिर्द भी उसी स्थापित किस्म का पानी तंत्र बन जाएगा जो ज़्यादा महंगा तथा उतना ही केन्द्रीकृत होगा। कुल लागत शायद थोड़ी कम हो जाए क्योंकि पानी वितरण तंत्र नहरों के आसपास न बनाया जाकर स्थानीय भण्डारों के आसपास बनाया जाएगा। परन्तु ऐसे तंत्र में भूजल के कार्यक्षम नियमन या उपयोग को शामिल करना संभव न होगा। प्रस्तावित सेवा क्षेत्र तब भी 18 लाख हैक्टर ही रहेगा। मुख्तसर बात यह है कि विकास की प्रकृति या उसकी दिशा पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

परन्तु कुछ तो फर्क पड़ेगा ही और यह फर्क महत्वपूर्ण होगा। पहला फर्क तो यही पड़ेगा कि, गुजरात का हिस्सा क़म किए बगैर, बांध के पीछे की डूब व विस्थापन में भारी कमी आएगी। खासकर पूरी तरह उजड़ने वाले गांवों की संख्या बहुत कम हो जाएगी। यह इस विकल्प का एक महत्वपूर्ण लाभ है।

दूसरा फर्क यह पड़ेगा कि ट्रायबूनल अवार्ड की भावना के अनुरूप इस विकल्प में नर्मदा के पानी का एक बड़ा हिस्सा (80%) गुजरात के सूखा प्रभावित इलाकों को प्राथमिकता के आधार पर मिलेगा। हमारा मत है कि गुजरात नदी प्रवाह में जितना योगदान देता है उसकी तुलना में उसे जो अतिरिक्त पानी आवंटित हुआ है उसे तभी उचित ठहराया जा सकता है जब इस पानी का इस्तेमाल उसी मकसद के लिए किया जाए जिसके लिए यह दिया गया था। बिजली उत्पादन में जो थोड़ी-सी कमी होगी उसकी भरपाई गुजरात में पानी के आन्तरिक पुनर्वितरण से हो जाती है।

विकल्प का तीसरा महत्व इस बात में निहित है कि इसमें मानसूनी बहाव के उपयोग तथा नहरों को स्थानीय भण्डारों हेतु फीडर के रूप में संचालित करने पर ज़ोर दिया गया है। फीडर नहरों का संचालन मानसून के दौरान तथा उसके तत्काल बाद की अवधि में ही होगा। रूढ़िगत प्रणाली में यह किया जाता है कि बड़ी नदियों के बारहमासी बहाव को रोका व उपयोग किया जाता है। वैकल्पिक प्रणाली में बड़ी नदियों के मानसूनोपरान्त बहाव को यथावत रखा गया है। यह जानी-मानी बात है कि मानसूनी बहाव नदियों के पर्यावरण तंत्र में नगण्य योगदान देता है। नदियों के पर्यावरण तंत्र की बुनियाद तो स्थिर, बारहमासी बहाव से बनती है। अतः बारहमासी बहाव को यथावत् रखने की दिशा में कोई भी परिवर्तन स्वागत योग्य है।

लिहाज़ा हमें लगता है कि स्थानीय उपयोग के तौर तरीकों में परिवर्तन न किया जाए तो भी वैकल्पिक व्यवस्था मूल सरदार सरोवर परियोजना से बेहतर है।

बहरहाल, विकल्प के प्रमुख गुण तो अभी नज़र आना शुरू भी नहीं हुए हैं। अभी तक हमने विकल्प की जितनी चर्चा की है उसका तो शायद कोई दूरगामी असर विकास के विनाशकारी चरित्र पर भी न पड़े। परन्तु इस तरह की केन्द्रीकृत जल परिवहन प्रणाली के आमूल पुनर्गठन का मुख्य मकसद तो यही है ना कि पानी के पुनरुत्पादक व समतामूलक उपयोग का समुचित आधार बने तथा उसमें स्थायित्व आए। विकल्प के प्रथम चरण का मकसद यही था कि इस कार्य हेतु उपयुक्त केन्द्रीय प्रणाली बनाई जाए। यानी ऐसी प्रणाली जो इस तरह के पानी उपयोग की बुनियाद बन सके। परन्तु मात्र बुनियाद पूरा भवन नहीं होती। हमें इस बुनियाद पर एक पूरा नया ढांचा खड़ा करना है, जिसकी चर्चा अगले खण्ड में की गई है।

खण्ड 2

पानी का समतामूलक व पुनरुत्पादक इस्तेमाल

एक तरह से पानी का पुनरुत्पादक व समतामूलक इस्तेमाल हमारी वैकल्पिक रचना के केन्द्र में है। वास्तव में विचार का प्रारंभिक बिन्दु यही है जिसकी वजह से हम केन्द्रीय परिवहन तंत्र की पुनर्रचना के विचार तक पहुंचे हैं। प्रथम खण्ड में हमने जिस पुनर्रचना की बात की थी उसके अपने महत्वपूर्ण पहलू हैं मगर उनका पूरा महत्व तभी उजागर होगा जब हम इस खण्ड की चर्चा पूरी कर लेंगे। इस खण्ड का सम्बंध पानी के पुनरुत्पादक व समतामूलक इस्तेमाल से है।

यहां जो दृष्टिकोण पेश किया जा रहा है उसकी मज़बूत बुनियाद है। यह बुनियाद सामाजिक अनुभवों और वैज्ञानिक ज्ञान पर टिकी है। पिछले दस-पन्द्रह वर्षों में विभिन्न सामाजिक संघर्षों और आंदोलनों तथा पानी के समतामूलक व पुनरुत्पादक इस्तेमाल से सम्बंधित विकास व वॉटरशेड परियोजनाओं की बदौलत महत्वपूर्ण अनुभव एकत्रित हुआ है। दूसरी तरफ वैज्ञानिक ज्ञान में बहुत इज़ाफा हुआ है।

पुनरुत्पादक व समतामूलक इस्तेमाल का मुद्दा पेचीदा है। दरअसल यह मुद्दा केन्द्रीय परिवहन तंत्र की पुनर्रचना से भी ज़्यादा पेचीदा है। प्रथम खण्ड में जिन मुद्दों की चर्चा की गई थी वे पूरी तरह नहीं, तो भी काफी हद तक तकनीकी थे। दूसरे खण्ड में हम जिन मुद्दों की चर्चा करने जा रहे हैं वे सामाजिक हैं। उनके परस्पर सम्बंध पेचीदा हैं। एक महत्वपूर्ण मुद्दा तो यही है कि इस कार्य के लिए ज़रूरी सामाजिक व्यवस्था की स्वीकार्यता कितनी है और यह कितनी व्यावहारिक है। परन्तु इन ज़रूरी मुद्दों की बात तब तक के लिए टालना होगी जब तक कि हमारे सामने वैकल्पिक रणनीति का ज़्यादा सम्पूर्ण चित्र नहीं आ जाता।

पुनरुत्पादक व समतामूलक उपयोग की न्यूनतम शर्तें

परियोजना चाहे बड़ी हो या छोटी, निजी हो या सरकारी, यदि पानी का टिकाऊ व समतापूर्ण इस्तेमाल सुनिश्चित करना है, तो चन्द न्यूनतम शर्तों का पालन करना होगा। यह ज़िम्मेदारी, पानी उपयोगकर्त्ताओं और राज्य की साझा ज़िम्मेदारी है। परियोजना जितनी बड़ी होगी, ज़िम्मेदारी भी उतनी ही ज़्यादा होगी। सरदार सरोवर जैसी परियोजनाओं में स्थिति और भी संजीदा होती है क्योंकि ये परियोजनाएं एक बड़े इलाके में पानी तंत्र व पानी उपयोग के तौर-तरीकों में बदलाव लाती हैं। सरकारी आंकड़ों के ही मुताबिक इस परियोजना का सेवा-क्षेत्र 18 लाख हैक्टर है जो 18,000 वर्ग कि.मी. कृषि क्षेत्र का द्योतक है।

हमने ऐसी न्यूनतम शर्तें परिभाषित करने की कोशिश की है। इन्हें संक्षेप में निम्नानुसार बयान किया जा सकता है :

(1) स्थानीय पानी और बाहरी पानी (नर्मदा पानी) का मिला-जुला उपयोग।

इस शर्त का नतीजा यह होता है कि पानी उपयोगकर्त्ताओं की यह ज़िम्मेदारी बन जाती है कि वे, बाहरी पानी प्राप्त होने से पूर्व, अपने इलाके में सतही व भूमिगत पानी संसाधनों को विकसित करें। दूसरी तरफ राज्य पर ज़िम्मेदारी आ जाती है कि वह स्थानीय जल संसाधनों के विकास को लागत में सम्मिलित करे तथा सही अनुपात में बाहरी पानी का प्रावधान सुनिश्चित करे। इस अनुपात का निर्धारण स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर किया जाएगा।

(2) सेवा क्षेत्र में हर परिवार के लिए बुनियादी सेवा का प्रावधान। बुनियादी सेवा प्राथमिकता के आधार पर दी जाए तथा इसकी विश्वसनीयता काफी ऊंची (80 प्रतिशत) हो। अतिरिक्त, आर्थिक सेवा तभी उपलब्ध कराई जाए जब प्राथमिक ज़रूरतों (पेयजल एवं बुनियादी सेवा) की पूर्ति हो गई हो।

यह उपयोगकर्त्ताओं की ज़िम्मेदारी हो जाती है कि वे एक ऐसी वितरण प्रणाली गठित करें जो सेवा क्षेत्र के हर परिवार को बुनियादी सेवा मुहैया करा सके तथा यह ध्यान रखें कि पानी का आवंटन व वितरण इन शर्तों के अनुरूप हो। दूसरी तरफ राज्य की ज़िम्मेदारी है कि इस तरह कि वितरण प्रणाली के निर्माण की लागत परियोजना लागत में शामिल करे तथा नर्मदा पानी के द्वारा उच्च विश्वसनीयता वाली बुनियादी सेवा उपलब्ध कराने के लिए ज़रूरी तंत्र बनाने हेतु तकनीकी सहयोग प्रदान करे। राज्य की यह भी ज़िम्मेदारी है कि पानी उपयोगकर्त्ताओं को इस तंत्र के रख-रखाव व संचालन तथा स्थानीय संसाधनों के और विकास हेतु ज़रूरी संसाधन मुहैया करवाए। ये संसाधन परियोजना की लागत वसूली में से उपलब्ध करवाए जा सकते हैं।

(3) बुनियादी सेवा मिलने के प्रत्युत्तर के तौर पर सेवा क्षेत्र में एक-तिहाई भाग पर स्थायी पर्णाच्छादन।

बुनियादी सेवा के प्रावधान के प्रत्युत्तर के रूप में यह उपयोगकर्त्ताओं की ज़िम्मेदारी होगी। जब बुनियादी सेवा मिलने लगेगी तो उपयोगकर्त्ताओं के लिए यह संभव हो जाएगा कि उत्पादन का नुकसान किए बगैर अपनी एक-तिहाई ज़मीन को उथली जड़ों वाली फसल उत्पादन से हटाकर गहरी जड़ों वाली वृक्ष फसलों में लगा दें।

(4) सारा व्यवहार व परस्पर समझौते पानी उपयोगकर्त्ता समूहों और राज्य के बीच होंगे। राज्य इस समूह को पानी उपलब्ध करा देगा तथा लागत वसूली समूह का काम होगा। सतही व भूमिगत पानी का अन्दरूनी आवंटन पूरी तरह पानी उपयोगकर्त्ता समूह के नियंत्रण में रहेगा। इसी प्रकार से आर्थिक सेवा की मात्रा तथा कीमतें भी ये समूह निर्धारित करेंगे। पूरे तंत्र के रख-रखाव तथा संचालन की ज़िम्मेदारी भी उन्हीं की होगी। शर्त यह है कि वे प्रथम तीन शर्तों का पालन करें।

ये न्यूनतम शर्तें अपने आप में पुनरुत्पादक व समतामूलक पानी उपयोग सुनिश्चित नहीं करतीं। ये तो मात्र एक प्रस्थान बिन्दु परिभाषित करती हैं जहां से इस तरह के पानी उपयोग की तरफ बढ़ा जा सकता है। ये शर्तें लोगों की ज़रूरतों व आकांक्षाओं और वैज्ञानिक नीति की ज़रूरतों के बीच एक सेतु का काम करेंगी। पानी उपयोग में टिकाऊपन व समता के विभिन्न मुद्दों की चर्चा के बाद हम इस मुद्दे पर फिर लौटेंगे।

स्थानीय जल संसाधन विकास: पहला ज़रूरी कदम

वैकल्पिक नज़रिये के मुताबिक, किसी विशाल जलाशय या स्रोत से उपलब्ध कराया जाने वाला पानी पूरक के रूप में होना चाहिए तथा इससे स्थानीय पानी तंत्र को सुदृढ़ता व स्थिरता प्रदान करने की प्रक्रिया में योगदान मिलना चाहिए। आज बड़ी परियोजनाओं में जो रवैया नज़र आता है वह इसके ठीक विपरीत है। बड़े जलाशयों या स्रोतों से जल्दबाज़ी में, बिना सोचे-विचारे पानी प्रदाय शुरू कर दिया जाता है। स्थानीय पानी संसाधन तंत्र के विकास का इसमें

कोई ध्यान नहीं रखा जाता। ऐसी स्थिति में उस इलाके की कृषि का विकास पूरी तरह बाहरी पानी पर आधारित हो जाता है। इससे बाहरी पानी पर निर्भरता ही पैदा होती है।

स्थानीय संसाधनों के विकास पर ध्यान न दिए जाने का एक परिणाम यह भी होता है कि इन संसाधनों की प्राथमिक उत्पादकता घटती जाती है तथा इकोसिस्टम बाहरी पानी द्वारा जनित द्वितीयक उत्पादकता पर निर्भर होती चली जाती है। तब उत्पादकता को बनाए रखने के लिए बाहरी संसाधनों व इनपुट की ज़रूरत क्रमशः बढ़ती ही जाती है। कमान क्षेत्र के केन्द्रीकृत प्रबन्धन की वजह से यह समस्या और भी पेचीदा हो जाती है क्योंकि केन्द्रीकृत प्रबन्धन में किसानों का इस बात पर कोई नियंत्रण नहीं होता कि कब, कितना पानी दिया जाए। नतीजा यह होता है कि पानी उपयोग की उत्पादकता व कार्यक्षमता दोनों में गिरावट आती है तथा इसकी भरपाई बढ़ती मात्रा में बाहरी इनपुट से करनी होती है।

यदि इससे बचना है, तो पहला ज़रूरी कदम यह होगा कि स्थानीय पानी संसाधनों का विकास किया जाए, उन्हें स्थिरता दी जाए तथा इसके बाद पानी भी इस तरह से उपलब्ध कराया जाए कि उससे इकोसिस्टम की प्राथमिक उत्पादकता महफूज़ रहे और बढ़े।

पहला चरण एक अन्य कारण से भी महत्व रखता है। इस चरण के ज़रिये ही पानी प्रबन्धन के संस्थागत व सांगठनिक स्वरूप की स्थापना होगी तथा बाहरी पानी ग्रहण करने हेतु स्थानीय तंत्र का ढांचा तैयार होगा। यह प्रक्रिया बाहरी पानी प्राप्त होने से पहले ही पूरी करनी होगी। एक बार बाहरी पानी उपलब्ध हो जाने के बाद उपयोगकर्त्ता की भागीदारी वगैरह लागू करना बेमानी साबित होगा।

बाकी सारे कारणों के अलावा यह भी एक महत्वपूर्ण कारण है जिसकी वजह से सरदार सरोवर परियोजना का निर्माण कार्य तत्काल रोककर पुनर्विचार किया जाना चाहिए। वास्तव में यह बात सारी नई व बड़ी परियोजनाओं पर लागू होती है। यह सही है कि अब तक जो खर्च हो चुका है वह इसकी वजह से कुछ समय तक बेकार पड़ा रहेगा मगर यदि निर्माण कार्य चलता रहा तो बाद में जो कीमत चुकानी पड़ेगी वह कहीं ज़्यादा होगी।

स्थानीय व बाहरी पानी का अनुपात

यानी सबसे पहले यह तय करना होगा कि स्थानीय व बाहरी पानी का अनुपात क्या हो। आजकल पानी के 'मिले-जुले' उपयोग के नाम पर कमान प्रबन्धन के क्षेत्र में स्थानीय जल संसाधनों के उपयोग पर काफी लफ्फाज़ी की जाती है। परन्तु दरअसल इस लफ्फाज़ी में पूरे समीकरण को सिर के बल खड़ा कर दिया जाता है। यह मान लिया जाता है कि स्थानीय पानी, बाहरी पानी का पूरक है। दूसरी बात यह है कि इसमें स्थानीय पानी का उपयोग किसी एकीकृत नीति का अंग नहीं है जिसमें स्थानीय पानी को शुरूआती बिन्दु माना गया हो।

यदि पानी के 'मिले-जुले' उपयोग की बात को बौद्धिक शगल से हटाकर वास्तविकता में साकार करना है, तो स्थानीय पानी व बाहरी पानी का अनुपात निश्चित करना होगा। हमने माना है कि यदि नर्मदा का 1 घन मीटर पानी उपलब्ध कराया जाना है तो 1 घन मीटर स्थानीय पानी पहले से ही उपलब्ध करा दिया गया होना चाहिए। इसके लिए सतहीं व भूमिगत संसाधनों का विकास हो चुका होना चाहिए। ज़ाहिर है कि 1:1 का यह अनुपात हर क्षेत्र में लागू नहीं किया जा सकेगा। कच्छ में शायद स्थानीय पानी का अनुपात कम करना पड़े। या शायद सरदार सरोवर के निकट के क्षेत्रों में यह अनुपात बढ़ाया भी जा सकता है। स्थानीय व बाहरी पानी के अनुपात का अन्तिम निर्धारण तो क्षेत्र विशेष की संभावनाओं के अध्ययन तथा वहां के लोगों से चर्चा के बाद ही होगा। फिलहाल तो हम 1:1 का अनुपात ही मान कर चल रहे हैं।

दूसरी ज़रूरत इस बात की है कि स्थानीय पानी संसाधनों के विकास और पुनरुत्पादक व समतामूलक इस्तेमाल को बड़ी परियोजनाओं का अभिन्न अंग माना जाए तथा परियोजना का नियोजन व क्रियान्वयन तदनुरूप हो। अर्थात स्थानीय पानी संसाधनों का विकास परियोजना लागत का हिस्सा है। विकल्प में हमने स्थानीय पानी संसाधन तथा भूजल के विकास की लागत वॉटरशेड के अनुसार जोड़ी है। हमने यह लागत 3500 रुपए प्रति हैक्टर ली है तथा माना है कि वॉटरशेड का क्षेत्रफल परियोजना के सेवा क्षेत्र से दुगना होगा (देखें बॉक्स)। विकल्प के सेवा क्षेत्र की गणना कर लेने के बाद हम इस मुद्दे को फिर से उठाएंगे।

समातामूलक पानी वितरण : बुनियादी व आर्थिक सेवा

समतामूलक पानी वितरण एक उभरती अवधारणा है। इस मुद्दे को चर्चित करने में पुणे ज़िले के पानी पंचायत आंदोलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यहां सबसे पहले पानी उपयोगकर्त्ता समूहों का गठन किया गया। इन समूहों के गठन का आधार यह था कि पानी का वितरण भूमि स्वामित्व से स्वतंत्र होना चाहिए। तब से यह अवधारणा काफी विकसित हो चुकी है। आज इसके कई स्वरूप हैं और दुर्भाग्यवश इसे लेकर कई गलतफहमियां भी हैं।

समतामूलक पानी वितरण की केन्द्रीय अवधारणा यह है कि पानी पर अधिकार को भूस्वामित्व से अलग करके देखा जाना चाहिए। आम तौर पर 'कमान क्षेत्र के अन्तर्गत समता' का अर्थ यह लगाया जाता है कि इसका सम्बंध भूमि से है। ऐसा मान लिया जाता है कि कमान में भूमि के हर कतरे को पानी का बराबर 'अधिकार' है। इसका परिणाम यह

वॉटरशेड लागत

वॉटरशेड विकास एक व्यापक शब्द है। इसकी लागत कई बातों पर निर्भर है, जैसे वृक्षारोपण की स्थिति, वृक्ष-घनत्व, बंडिंग का परिमाण तथा प्रयुक्त टेक्नॉलॉजी आदि। इसलिए यह स्पष्ट करना ज़रूरी है कि हम किस तरह के वॉटरशेड विकास की बात कर रहे हैं तथा इसकी लागत 3500 रुपए प्रति हैक्टर कैसे आती है।

यहां हम पूरे इलाके में किसी व्यापक व समग्र वॉटरशेड विकास की बात नहीं कर रहे हैं। हमारा तात्पर्य एक ऐसे कार्यक्रम से है जिसमें भूक्षरण के नियंत्रण व पानी के सतही बहाव को दिशा देकर पानी की उपलब्धता को यथासंभव बढ़ाया जाएगा। इसके लिए हमें रन-ऑफ (तेज़ सतही बहाव) क्षेत्र, रिसाव क्षेत्र तथा भण्डारण स्थलों की शिनाख्त करनी होगी। इसके बाद प्रत्येक के बारे में उपयुक्त रणनीति तय करनी होगी। आमतौर पर वॉटरशेड विकास के जिन कार्यक्रमों में इस तरह का विभाजन नहीं किया जाता उनमें प्रवृत्ति यह रहती है कि सतही बहाव को यथासंभव अधिकतम रोका जाए। परिणाम यह होता है कि लागत बहुत बढ़ जाती है, अस्थायी भण्डारों से वाष्पन होता है तथा बड़ी संख्या में ऐसे स्थल पैदा हो जाते हैं जहां की सतह पानी से संतृप्त हो चुकी होती है।

हम एक अलग रणनीति का सुझाव दे रहे हैं। हमारा सुझाव है कि तेज़ ढलान वाले रन-ऑफ क्षेत्रों को अलग किया जाए जहां आम तौर पर मिट्टी की मात्रा भी कम है तथा भण्डारण क्षमता खराब है। इन क्षेत्रों में कोशिश यह नहीं होनी चाहिए कि रन-ऑफ को रोका जाए, अपितु यह होनी चाहिए कि भूमि क्षरण कम से कम हो तथा बहने वाला पानी रिसाव व भण्डारण स्थलों की ओर जाए। भण्डारण क्षमता, रन-ऑफ क्षेत्र, रिसाव/रुकाव क्षेत्र तथा भण्डारण क्षेत्र का परस्पर अनुपात फसल चक्र के अनुसार निर्धारित किया जा सकता है ताकि वाष्पन से हानि कम से कम हो।

सामान्यत: रन-ऑफ क्षेत्र में उथली जड़ों वाली प्रजातियां तथा घास लगाई जा सकती है और उपयुक्त स्थानों पर गहरी जड़ों वाली प्रजातियां लगाई जा सकती हैं। इस प्रकार से प्लांटेशन लागत में कमी की जा सकेगी। तब अधिकांश सेवा क्षेत्र रिसाव क्षेत्र के रूप में उपयोगी हो जाएगा तथा जिस क्षेत्र पर वर्तमान में फसल नहीं ली जा रही है वहां उथली जड़ों वाली प्रजातियां या घास से काम चल जाएगा। अलबत्ता आगे चलकर बहुस्तरीय जड़ व पर्णाच्छादन संरचना विकसित करना होगी ताकि मिट्टी के विभिन्न स्तरों में संग्रहित पानी का कारगर उपयोग किया जा सके। सेवा क्षेत्र में वाष्पन से होने वाले नुकसान को रोकने हेतु पानी प्रदाय की मात्रा व समय पर कारगर नियंत्रण करना होगा ताकि पानी का कार्यक्षम उपयोग हो सके। इस नुकसान को रोकने हेतु मल्च या पत्तियों के कचरे से ढंकने का भी सहारा लिया जा सकता है। मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार के ज़रिए रिसाव दर बढ़ाई जा सकती है। इसके लिए सेवा क्षेत्र के उस हिस्से से जैविक इनपुट प्राप्त किए जाएंगे जहां वनस्पति आच्छादन तैयार किया गया है।

गणना के लिहाज़ से हम 3500 रुपए प्रति हैक्टर की लागत को दो हिस्सों में बांट सकते हैं : 2500 रुपए प्रति हैक्टर अर्थवर्क हेतु तथा 1000 रुपए पेड़ों व घास हेतु। खन्दक व बन्ध के एक तंत्र की कल्पना कीजिए जिसमें खन्दक से प्राप्त मिट्टी का इस्तेमाल बन्ध बनाने में किया गया है। एक सामान्य खन्दक व बन्ध 2 फीट चौड़ा व 1 फुट ऊंचा होगा यानी 0.6 मीटर गुणा 0.3 मीटर का होगा। यदि हम खुदाई की लागत 20 रुपए प्रति घन मीटर मानें तो खन्दक-बन्ध प्रणाली की लागत 3.6 रुपए प्रति मीटर होगी। यानी 2500 रुपए में 700 मीटर लम्बी खन्दक-बंध रचना बनाई जा सकती है। यदि हम 1 हैक्टर का वर्गाकार ढांचा बनाएं तो यह 100 मीटर लम्बा व 100 मीटर चौड़ा होगा। यानी इतने क्षेत्र में हमें 13-13 मीटर की दूरी पर 7 खन्दक-बन्ध मिल जाएंगे जो हमारे मकसद के लिए पर्याप्त होंगे।

लागत के दूसरे हिस्से (1000 रुपए) का विभाजन पेड़ों व घास के बीच करना होगा। घास लगाने की लागत पेड़ों से कम ही होती है। यदि हम पूरा पैसा बन्ध पर पेड़ लगाने पर खर्च करें तो 2 रुपए प्रति पेड़ के हिसाब से हम 500 पेड़ लगा सकेंगे। यानी 700 मीटर के बन्ध ए 500 पेड़ अर्थात् प्रति 1.4 मीटर पर एक पेड़। यह हमारे उद्देश्य के लिहाज़ से पर्याप्त है।

होता है कि वितरण बड़े भूस्वामियों के पक्ष में झुक जाता है। जितनी ज़्यादा ज़मीन आपके पास है, उतना ही ज़्यादा पानी का अधिकार आपको होगा।

पानी पंचायत ने जिस बात को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया वह यह थी कि पानी हर किसान या हर परिवार की महत्वपूर्ण ज़रूरत है और यह ज़रूरत इस बात से स्वतंत्र है कि उसके पास कितनी ज़मीन है। पानी की ज़रूरत इसलिए है क्योंकि यह जीविका का आधार है। अतः पानी सम्बंधी अधिकारों के निर्धारण का आधार जीविका होगा, भूमि स्वामित्व नहीं।

दूसरी बात यह है कि समतामूलक पानी वितरण का अर्थ सारे पानी का बराबर बंटवारा कर देना नहीं है; ज़्यादा महत्व प्राथमिकताएं तय करने का है। जिन लोगों का जीवन ज़मीन पर निर्भर है, जिसमें भूमिहीन मज़दूर भी शमिल हैं, का पानी पर प्रथम यानी प्राथमिक व बराबरी का अधिकार है। एक तरह से यह रोज़गार के अधिकार का ही दूसरा रूप है। इन प्राथमिक अधिकारों की पूर्ति हो जाने के बाद ही पानी अतिरिक्त, आर्थिक ज़रूरतों व उत्पादन के लिए उपलब्ध हो सकता है।

यह गौरतलब है कि समतामूलक पानी वितरण की इस अवधारणा में दो किस्म की सिंचाई या पानी सुविधा में स्पष्ट विभाजन होता है। पहली बुनियादी सुविधा है जिसका सम्बंध जीविका से है और दूसरी अतिरिक्त आर्थिक सुविधा है। समतामूलक पानी वितरण की नीति में इन दो तरह की सुविधाओं का प्रबन्धन अलग-अलग ढंग से किया जाएगा। बुनियादी सुविधा सबको, न्यूनतम उचित कीमत पर, उच्च विश्वसनीयता के आधार पर प्रदान की जाएगी। बचा हुआ पानी हर साल उपलब्धता, मांग व आर्थिक सामर्थ्य के मुताबिक आर्थिक सुविधा हेतु दिया जाएगा। इसकी कीमत आर्थिक आधारों पर तय की जाएगी।

बुनियादी सुविधा और सामाजिक न्याय

बुनियादी सेवा का विचार सामाजिक न्याय सम्बंधी हमारे विचारों का परिणाम है। एक न्यूनतम शर्त के तौर पर मने माना है कि सेवा क्षेत्र के हर परिवार को पानी की बराबर-बराबर मात्रा बुनियादी सुविधा के रूप में दी जाएगी। ुनियादी सुविधा के लिए पानी की मात्रा की गणना इलाके की सामान्य जोत के आकार के आधार पर की गई है। इसमें ीयजल तथा अनाज, दालें, जलाऊ लकड़ी, चारा, इमारती लकड़ी आदि के उत्पादन हेतु ज़रूरी पानी के अलावा इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि जीवन निर्वाह हेतु थोड़े धन की भी ज़रूरत होती है।

सामाजिक न्याय के कई ऐसे पहलू भी हैं जिनका ध्यान बुनियादी सुविधा में नहीं रखा जा सका है। मसलन बुनियादी सुविधा की गणना औसत सामान्य जोत के आधार पर की गई है। जिन लोगों के पास इससे कम ज़मीन है उन्हें जीवन निर्वाह की ज़रूरतें पूरी करने में दिक्कत आ सकती है। तब उन्हें अतिरिक्त सहारे की दरकार होगी। शायद सीमान्त किसानों के लिए इस बुनियादी सुविधा में अतिरिक्त पूरक सुविधा देने की ज़रूरत पड़े। इसी प्रकार से भूमिहीन परिवारों को कुछ भूमि की उपलब्धता भी सुनिश्चित करनी होगी। कमज़ोर तबकों के लिए भी विशेष प्रावधान की ज़रूरत होगी। इसी प्रकार से महिलाओं के लिए भी विशेष प्रावधान करना होगा। जैसे उन्हें छोटे प्लॉट आवंटित किए जा सकते

हैं जिस पर वे सब्ज़ियां या कोई अन्य कीमती चीज़ पैदा कर सकें। यह उनके लिए आमदनी का एक स्वतंत्र साधन बन जाएगा। ऐसे और उपाय सोचे जा सकते हैं।

ऐसी कई व्यवस्थाएं मुमकिन हैं। इनकी चर्चा हम आगे करेंगे। परन्तु इन व्यवस्थाओं को हमने पानी उपयोगकर्त्ता समूहों पर लगने वाली न्यूनतम शर्त नहीं माना है। हमने तो मात्र इतना किया है कि स्थानीय समूह के हाथों में पर्याप्त नियंत्रण आ जाए ताकि उस इलाके में सामाजिक न्याय सम्बंधी चेतना के अनुरूप अन्य तत्व इसमें जोड़े जा सकें।

क्या आर्थिक सुविधा हेतु पानी बचेगा?

आर्थिक व बुनियादी सुविधा के बीच भेद करने पर दो महत्वपूर्ण मुद्दे उभरते हैं। पहला मुद्दा यह है कि बुनियादी सुविधा के लिए कितने पानी की ज़रूरत होगी तथा इसकी गणना कैसे करें? दूसरा मुद्दा है कि बुनियादी सुविधा पूरी होने के बाद आर्थिक सुविधा के लिए पानी बचेगा या नहीं?

बुनियादी सुविधा हेतु पानी की मात्रा के निर्धारण का सवाल पानी के पुनरुत्पादक उपयोग के मुद्दे से जुड़ा है। इस मुद्दे को हम थोड़ा आगे चलकर विस्तार में उठाएंगे। दूसरा मुद्दा इस बात से सम्बंधित है कि बुनियादी सुविधा हेतु कितना पानी लगेगा। यहां हम इस मुद्दे पर गणना की विधि के सन्दर्भ में विचार करेंगे।

चूंकि बुनियादी सुविधा एक अनिवार्य सुविधा है इसलिए इसकी विश्वसनीयता काफी ज़्यादा होनी चाहिए। हम यह मानकर चलेंगे कि बुनियादी सुविधा की विश्वसनीयता 80 प्रतिशत होनी चाहिए। दो किस्म की सुविधाओं की गणना करते वक्त यह आवश्यक है कि वर्षा की मात्रा तथा उसकी विश्वसनीयता, दोनों का ध्यान रखा जाए। मात्र औसत वर्षा पर ध्यान देना पर्याप्त नहीं होगा क्योंकि आमतौर पर औसत वर्षा की विश्वसनीयता 50 प्रतिशत ही होती है। यदि औसत वर्षा 600 मि.मी. है तो प्रति 2 में से मात्र 1 वर्ष ही हम 600 मि.मी. वर्षा का पक्का भरोसा रख सकते हैं। 80 प्रतिशत विश्वसनीयता का अर्थ यह होगा कि 5 वर्षों में से कम से कम 4 वर्ष उतनी वर्षा हो। यानी यदि औसत वर्षा 600 मि.मी. है और 80 प्रतिशत विश्वसनीयता 400 मि.मी. वर्षा की है तो बुनियादी सुविधा की योजना 600 मि.मी. के आधार पर नहीं बल्कि 400 मि.मी. के आधार पर बनाई जाना चाहिए।

उपरोक्त चर्चा में एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलता है। प्रायः औसत वर्षा के आंकड़े को देखकर कई लोग यह कह देते हैं कि इन इलाकों में वॉटरशेड विकास के ज़रिये सिर्फ आन्तरिक पानी के द्वारा बुनियादी सुविधा उपलब्ध कराना संभव है। मगर यह पर्याप्त नहीं है क्योंकि बुनियादी सुविधा की विश्वसनीयता 80 प्रतिशत होना ज़रूरी है। हमारा अनुमान है कि सूखा ग्रस्त इलाकों के बड़े हिस्से में वहीं की 80 प्रतिशत विश्वसनीय वर्षा के भरोसे बुनियादी सुविधा मुहैया कराना मुमकिन नहीं है। इसलिए इन इलाकों में वॉटरशेड विकास के साथ-साथ बाहरी पानी का सहारा भी ज़रूरी होगा। हमारी राय में यदि बाहरी पानी का यह सहारा सार्थक बनाना है तो ज़रूरी होगा कि इसकी विश्वसनीयता थोड़ी और ज़्यादा यानी 90 प्रतिशत हो।

इसमें से एक और निष्कर्ष उभरता है। निष्कर्ष यह है कि यदि बुनियादी सुविधा तथा बाहरी पानी का सहारा दोनों की योजना 80 प्रतिशत या उससे भी ज़्यादा विश्वसनीयता के आधार पर बनाई जाती है, तो अधिकांश वर्षों में आर्थिक सुविधा हेतु पानी उपलब्ध हो जाएगा। यह अतिरिक्त पानी बाहरी व अन्दरूनी दोनों जगहों से उपलब्ध होगा।

समता व टिकाऊपन

आमतौर पर इस बात की उपेक्षा की जाती है कि समता व टिकाऊपन साथ-साथ चलते हैं। वास्तव में वर्तमान में जिस ढंग से कमान क्षेत्र प्रबन्धन गुरुत्व बहाव के आधार पर होता है तथा जिस ढंग से पानी को पम्प करने से कतराते हैं, उसकी वजह से समता व टिकाऊपन दोनों का ह्रास होता है।

रूढ़िगत तंत्र में नहरतंत्र गुरुत्व चालित होता है तथा जिन लोगों की ज़मीनें नहर के इर्द-गिर्द होती हैं उन्हें इफरात में पानी मिल जाता है। यानी जिन लोगों की ज़मीनें गुरुत्व चालित नहरों के नज़दीक होंगी उन्हें ज़्यादा पानी मिलेगा। और जिनके पास जितनी ज़्यादा ज़मीन होगी उन्हें उतना ज़्यादा पानी मिलेगा। चूंकि पानी का उपयोग सघनता से होता है इसलिए इसका फायदा कम लोगों को मिलता है। यानी लाभ सकेन्द्रित हो जाते हैं। यह बात कई अध्ययनों से सिद्ध हो चुकी है। इसके साथ जब उत्पादन प्रणाली भी ऊर्जा, उर्वरक, पानी, कीटनाशकों आदि के सघन इस्तेमाल पर टिकी हो, तो सारे फायदे चन्द संसाधन-सम्पन्न किसानों के हाथों में सिमट जाते हैं।

जहां तक इकोसिस्टम का सवाल है तो इस तरह की सिंचाई प्रणाली एक तरह के 'इकोसिस्टम टापू' का निर्माण करती है। यह टापू आसपास की इकॉलॉजिकल परिस्थिति से बेमेल होती है। अव्वल तो ऐसी टापूनुमा इकोसिस्टम बनाए रखने के लिए भारी लागत पर बाहरी इनपुट का उपयोग करना होता है। दूसरी बात यह है कि ऐसी इकोसिस्टम ऐसे कीटों के फलने-फूलने का स्थान बन जाती हैं जो अन्यथा एक 'सामान्य' इकोसिस्टम की नियंत्रक प्रक्रियाओं के तहत नियंत्रित रहते। तीसरी बात यह है कि टापूनुमा होने की वजह से ये इकोसिस्टम ऐसी प्रक्रियाओं को जन्म नहीं देती जो समूची इकोसिस्टम को समृद्ध कर सकें।

इसके विपरीत यदि पानी का वितरण समतामूलक हो, तो इसके प्रभाव काफी अलग होते हैं। ऐसी प्रणाली का सामाजिक न्याय पक्ष तो स्वत: स्पष्ट है। इसके अलावा जब पानी हर परिवार की ज़मीन पर पहुंचता है तो इसका उपयोग सघन ढंग से नहीं बल्कि विस्तृत रूप में करना होता है। इस तरह फैले हुए व विस्तृत ढंग से पानी का उपयोग करने पर इकॉलॉजी के टापू नहीं बनते क्योंकि यह पानी तो समूची इकोसिस्टम की उन्नति का आधार बन जाता है। दरअसल समतामूलक पानी वितरण पानी के टिकाऊ इस्तेमाल का आधार बन जाता है।

सिर्फ बहुत बुरे वर्षों में ही आर्थिक सेवा हेतु पानी नहीं मिल पाएगा। उन वर्षों में भी बुनियादी सुविधा तो सबको मिलती ही रहेगी। हमने महाराष्ट्र के अर्ध सूखा ग्रस्त क्षेत्र में बारिश के आंकड़ों के आधार पर एक विश्लेषण किया है। इससे पता चलता है कि औसत वर्षा के आधार पर आंकी गई पानी की मात्रा में से 30 से 40 प्रतिशत तक पानी ार्थिक सुविधा के लिए उपलब्ध हो जाता है। शेष पानी बुनियादी सुविधा के लिए है ही।

इकोसिस्टम की उत्पादकता तथा बुनियादी सुविधा : सवाल दर सवाल

दूसरा सवाल हमने यह उठाया था कि बुनियादी सुविधा का मतलब कितने पानी से है? यह सवाल काफी पेचीदा है। खासकर यदि हम इकोसिस्टम की उत्पादकता तथा टिकाऊपन को प्रस्थान बिन्दु मानें तो यह सवाल काफी जटिल हो जाता है। इस सवाल से जुड़े ज़रूरी मुद्दों को लेकर पर्यावरण आंदोलनों तक में पर्याप्त जागरूकता नहीं है। अत: इस मामले से सम्बंधित मुद्दों की चर्चा करना लाज़मी है।

पानी के टिकाऊ उपयोग की प्रमुख अवधारणाएं

पानी के टिकाऊ (निभने योग्य) उपयोग की बात को समझने के लिए कुछ अवधारणाएं समझना ज़रूरी है। पहली अवधारणा है प्राथमिक उत्पादकता की एवं प्राथमिक व द्वितीयक उत्पादकता में फर्क की। दूसरी अवधारणा है जैव पदार्थ तथा जैव पदार्थ संभावना की।

सबसे पहले प्राथमिक उत्पादकता पर गौर किया जाए। यदि इकोसिस्टम से सारे बाहरी इनपुट हटा लिए जाएं तो इसकी जो उत्पादकता होगी उसे प्राथमिक उत्पादकता कह सकते हैं। किसी इकॉलॉजिक सिस्टम में बाहरी इनपुट के उपयोग से उत्पादकता में जो वृद्धि होती है वह द्वितीयक उत्पादकता कही जाती है।

जो उत्पादकता हमें नज़र आती है वह इन दोनों किस्म की उत्पादकता का योग होती है। इस विभाजन पर कोई ध्यान नहीं देता। यह बहुत संभव है कि प्रकट (नज़र आने वाली) उत्पादकता बढ़ रही हो मगर प्राथमिक उत्पादकता घट रही हो। प्राथमिक उत्पादकता में इस गिरावट के कई अप्रत्यक्ष संकेत मिलते रहते हैं। पेयजल का बढ़ता अभाव ऐसा ही एक संकेत है। दूसरा संकेत वह है जब हमें उत्पादकता को पूर्व के स्तर पर बनाए रखने के लिए भी बढ़ती मात्रा में बाहरी इनपुट डालने होते हैं। इस लिहाज़ से हमें कई संकेत मिल रहे हैं कि बाहरी इनपुट के असीमित उपयोग की वजह से प्राथमिक उत्पादकता घट रही है। प्रकृति की यह प्राथमिक उत्पादकता ही हमारा सबसे अहम संसाधन है। अतः आज जिसे हम विकास मान रहे हैं वह ज़्यादा गहरे अर्थों में इस बुनियादी संसाधन के विनाश का ही एक रूप है। इस गिरावट को रोकना व उलटना अर्थात प्राथमिक उत्पादकता की हिफाज़त व वृद्धि किसी भी ज़मीन व पानी प्रबंधन प्रणाली का सबसे अनिवार्य काम है जिसे प्राथमिकता देकर किया जाना चाहिए।

यहां यह गलतफहमी पैदा नहीं होना चाहिए कि हम किसी भी इकोसिस्टम में बाहरी संसाधनों के उपयोग से इंकार करते हैं। न ही हम इस बात के हिमायती हैं कि खालिस जैविक खेती या प्राकृतिक खेती ही एकमात्र नीति होनी चाहिए। दरअसल, हम यदि प्राथमिक व द्वितीयक उत्पादकता के अन्तर को दृष्टिगत रखें तो संसाधनों के टिकाऊ उपयोग के मापदण्ड ज़्यादा स्पष्ट नज़र आते हैं। यदि टिकाऊपन का ध्यान रखा जाए तो द्वितीयक उत्पादकता भी एक महत्वपूर्ण लाभ है और यह मानवीय सृजनात्मकता का लक्षण है। परन्तु इससे लाभ उठाने के लिए हमारे पास स्पष्ट, सोची-समझी कसौटी होनी चाहिए। यदि बाहरी इनपुट का उपयोग इस तरह से होता है कि प्राथमिकता उत्पादकता में गिरावट नहीं आती और/या वह बढ़ती है तो ऐसा उपयोग टिकाऊ कहा जाएगा। हमें इस तरह के उपयोग से बढ़ी उत्पादकता का पूरा लाभ लेना चाहिए। वास्तव में यह हमारा दृढ़ मत है कि बाहरी इनपुट के ऐसे उपयोग के बगैर हमारी बुनियादी ज़रूरतों तक की पूर्ति असंभव है।

दूसरी अवधारणा बायोमास यानी जैव पदार्थ की है। (आगे आमतौर पर जैव पदार्थ से हमारा तात्पर्य प्रकाश संश्लेषण से प्राप्त जैव पदार्थ यानी प्राथमिक जैव पदार्थ से है। फिलहाल हम ग्लूकोज़ परिवर्तन दर को अनदेखा कर रहे हैं।) चूंकि किसी भी इकोसिस्टम में सारी जैविक गतिविधि कुल प्रकाश संश्लेषण उत्पादन पर निर्भर है इसलिए जैव पदार्थ संसाधन ही इकोसिस्टम की प्राथमिक उत्पादकता का द्योतक है। अतः जैव पदार्थ का अर्थ है कुल वानस्पतिक पदार्थ जो किसी भी इकोसिस्टम में जैविक चक्र का आधार है। कुल वानस्पतिक पदार्थ से तात्पर्य उसके सूखे वज़न से

है। इस बायोमास के दो पहलू हैं। एक पहलू है उत्पादन की कुल मात्रा। दूसरा पहलू है कि पूरे चक्र से गुज़रने के बाद बायोमास का एक हिस्सा वापस मिट्टी में पहुंचकर पौधों को उपलब्ध हो जाता है। संक्षेप में, कुल बायोमास उत्पादन तथा वह बायोमास जो रीसायकल होता है, ये दो महत्वपूर्ण सूचक हैं। मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि बाहरी इनपुट का इस्तेमाल तभी टिकाऊ है जब इन दोनों सूचकों में वृद्धि हो तथा कुल उत्पादित बायोमास में से एक-तिहाई रीसायकल होता हो। स्पष्ट है कि यहां बाहरी इनपुट बहुत ज़्यादा नहीं हो सकते। यह कृषि का एक नया उभरता वैकल्पिक नज़रिया है न्यूनतम बाहरी इनपुट वाली टिकाऊ खेती (Low External Input Sustainable Agriculture)।

बायोमास उत्पादकता और ज़रूरतों की पूर्ति

बायोमास उत्पादन को दो तरह से देखा जा सकता है: इकोसिस्टम में पैदा कुल बायोमास तथा इस बायोमास का विभिन्न रूपों, प्रजातियों (ज्वार, चना, सूबबूल आदि) में विभाजन या विभिन्न रूपों (पत्तियां, फल, अनाज, तने की लकड़ी, जड़ें, तेल, रेज़िन आदि) में विभाजन। जीवन निर्वाह की दृष्टि से बायोमास के कुल उत्पादन पर ध्यान देना भी ज़रूरी है तथा यह देखना भी ज़रूरी है कि वह किन-किन रूपों में प्राप्त हो रहा है।

किसी ज़मीन से पैदा किए जा सकने वाले कुल बायोमास का सम्बंध मिट्टी में मौजूद बायोमास, मिट्टी की बनावट, मिट्टी में मौजूद विभिन्न पोषक पदार्थ, भूजल के स्तर, मिट्टी की पानी धारण क्षमता आदि से होता है। दूसरी ओर फसल का चयन व उसकी देखरेख के जो तरीके हम अपनाते हैं उससे तय होता है कि इस बायोमास का विभाजन विभिन्न रूपों में कैसा होगा।

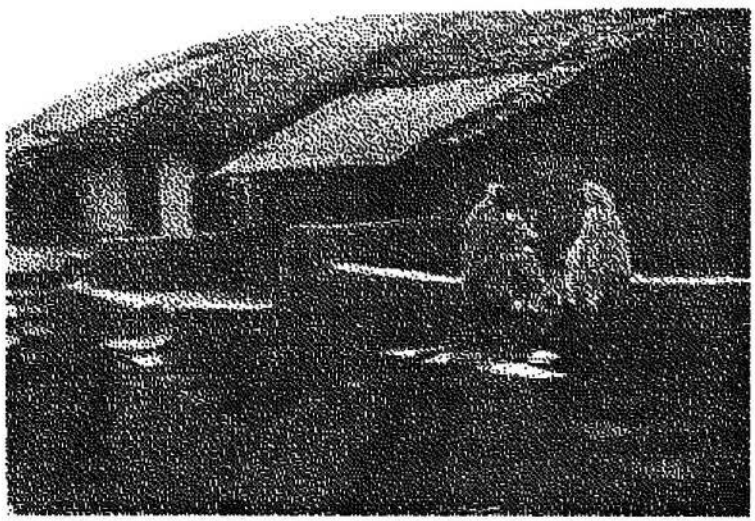

तब हम यह गणना कर सकते हैं कि एक परिवार के जीवन निर्वाह के लिए बायोमास के रूप में कितने उत्पादन की ज़रूरत होगी। मसलन 5 व्यक्तियों के एक परिवार की ज़रूरतें 18 टन बायोमास उत्पादन से पूरी की जा सकती हैं। इसको अलग-अलग मदों में निम्नानुसार बांट सकते हैं :

उपयोग/ज़रूरत	बायोमास सूखा वज़न (टन में)	
खाद्यान्न (अनाज, दालें, तिलहन, सब्ज़ियां)	2	
जलाऊ लकड़ी	2	
चारा	5	(एक जोड़ी बैल)
अन्य बायोमास (पत्तियां वगैरह)	3	इकोसिस्टम में बायोमास रीसायकल 6 टन
जड़ें	3	
नगद आमदनी हेतु बायोमास	3	
कुल	18 टन	

एक मोटे अनुमान के तौर पर हम कह सकते हैं कि यदि कुल उत्पादित बायोमास में से 1/3 हिस्सा वापस रीसायकल होता रहे तो उस मिट्टी की प्राथमिक उत्पादकता बरकरार रहेगी। इसी के आधार पर हमने ऊपर माना है कि न्यूनतम 6 टन बायोमास को रीसायकल किया जाएगा। यदि चारे के उपयोग से उत्पन्न गोबर का इस्तेमाल खाद के रूप में किया जाए तो रीसायकल किए जाने पर बायोमास की मात्रा में 2 टन की और वृद्धि की जा सकती है। यानी चारे में लगभग 40% की वृद्धि की जा सकती है। इसके अलावा फिलहाल हमारे यहां पशुधन का युक्तिसंगत उपयोग नहीं होता। यदि एक बैल जोड़ी का इस्तेमाल दो परिवार मिल-बांटकर करें तो बायोमास में 2.5 टन की बचत हो सकती है जो अन्य कार्यों में प्रयुक्त किया जा सकता है।

बाज़ार में बिक्री हेतु उपलब्ध 3 टन बायोमास कई रूपों में हो सकता है। इसे आमतौर पर फलों के रूप में अथवा कीमती कृषि उपज के रूप में पैदा किया जाता है। यदि हम इमारती लकड़ी, बांस, नीम तेल, औषधि पौधों आदि को इसमें जोड़ लें तो बिक्री हेतु विविध उत्पाद उपलब्ध हो जाते हैं। फिलहाल आसानी के लिए हम मान लेते हैं कि बिक्री योग्य बायोमास फलों के रूप में है। ऊपर की गणना में हमने बायोमास का शुष्क वज़न लिया है। बिक्री योग्य ताज़े फलों का वज़न इससे कहीं ज़्यादा होगा। (इमारती लकड़ी या बांस के मामले में बिक्री योग्य उत्पाद भी 3 टन ही माना जा सकता है।) ताज़े उत्पाद का वज़न सामान्यतः 4.5 से 7.5 टन के बीच होगा। यदि इसकी कीमत 3 रुपए प्रति किलोग्राम भी लगाई जाए तो इस बायोमास से 13,500 से 22,500 रुपए के बीच आमदनी होगी।

अतः यदि हर परिवार को 18 टन बायोमास उत्पादन के तुल्य संसाधन उपलब्ध करा दिए जाएं, तो वह अपनी बुनियादी ज़रूरतें पूरी करने के अलावा अतिरिक्त आमदनी भी हासिल कर सकेगा जो उसकी नगद की ज़रूरतें पूरी करने में उपयोगी होगी। अतः यहां हमने बुनियादी सेवा उस सेवा को माना है जिसके ज़रिये एक आम परिवार को 18 टन बायोमास उत्पादन की गुंजाइश मुहैया कराई जा सके।

क्या 30 किलोग्राम प्रति हैक्टर-मिली मीटर का आंकड़ा बहुत ज़्यादा है ?

कई पाठक शायद सोच रहे होंगे कि 30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर मि.मी. का आंकड़ा बहुत ज़्यादा है। क्या इसे व्यापक रूप से हासिल किया जा सकेगा अथवा यह अपवाद ही रहेगा? और वर्तमान उत्पादकता स्तर से इसका क्या सामंजस्य है? इस पर थोड़ी चर्चा लाज़मी है।

सर्वप्रथम तो हम यह स्पष्ट कर दें कि 30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर-मिली मीटर की उत्पादकता साकार करने की एक शर्त है। शर्त यह है कि बुनियादी सुविधा का सुनिश्चित प्रावधान हो। इस शर्त का अर्थ ध्यान में रखना बहुत ज़रूरी है। आमतौर पर किसान जिसे 'अच्छा साल' कहते हैं उसमें बारिश की मात्रा व पैटर्न दोनों उपयुक्त होते हैं। इन वर्षों में किसान पारम्परिक बरसाती फसलों की उतनी उपज प्राप्त कर लेते हैं जो हमारे द्वारा मानी गई उत्पादकता से मेल खाती है। परन्तु यह समझना ज़रूरी है कि बाकी वर्षों में वे उतनी उपज क्यों प्राप्त नहीं कर पाते।

यह समझना तो आसान है कि जिस वर्ष वर्षा की मात्रा कम होती है, उस वर्ष बरसाती खेती की उत्पादकता कम क्यों होती है। परन्तु कई ऐसे भी वर्ष होते हैं जब वर्षा की मात्रा तो समुचित होती है मगर उपज कम होती है। यह बरसात के पैटर्न का नतीजा होता है। आमतौर पर बारिश छोटी-छोटी अवधियों में होती है। और इनके बीच शुष्क अन्तराल होते हैं। इस अन्तराल के दौरान पौधा नमी का उपयोग करता है। यह नमी एक निश्चित अवधि तक पौधे का निर्वाह कर सकती है। यदि शुष्क अन्तराल इस अवधि से लम्बा हो जाए तो पौधा तनाव महसूस करने लगता है। जितना लम्बा शुष्क अन्तराल होगा, तनाव उतना ही ज़्यादा होगा तथा तनाव ज़्यादा होने पर वृद्धि धीमी हो जाएगी। यदि यह तनाव पौधे की वृद्धि के निर्णायक दौर में हो, तो उपज में और भी ज़्यादा गिरावट आती है।

इस शुष्क अन्तराल के तनाव से निपटने के दो तरीके हैं : पहला कि इस अन्तराल में पानी उपलब्ध हो जाए और दूसरा कि मिट्टी की नमी धारण क्षमता बढ़ जाए। बुनियादी सुविधा का प्रावधान इन शुष्क अन्तरालों से निपटने में मदद करता है और पौधे को उपलब्ध नमी का स्तर एक सा बना रहता है। यह लगभग वैसा ही है जैसे कि हर वर्ष 'अच्छा साल' नुमा हो जाए। हमारे विकल्प के तहत यह 80% विश्वसनीयता से होगा। इसलिए आगे बुनियादी सुविधा के सेवा क्षेत्र में उत्पादकता की गणना हेतु बरसाती फसलों की 'अच्छे साल' की उपज को आधार मानेंगे।

एक उदाहरण के रूप में हम अर्ध सूखा क्षेत्र में ज्वार को लेते हैं। महाराष्ट्र में अर्ध सूखा क्षेत्र के किसानों से बातचीत के दौरान यह बात उभरकर आई कि वे बरसाती ज्वार की उपज 12 क्विंटल प्रति एकड़ या 3 टन प्रति हैक्टर प्राप्त कर लेते हैं। पौधे तनाव महसूस करते हैं किन्तु निर्णायक अवधियों में नहीं। ज्वार का उपज सूचकांक 0.33 माना जा सकता है यानी कुल बायोमास उपज लगभग 9 टन प्रति हैक्टर होगी। 110 दिनों की अवधि में पानी की मात्रा का हमारा अनुमान 302 मिलीमीटर आता है। यह 30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर-मिली मीटर के बराबर है। थोड़े पूरक पोषक तत्वों तथा मिट्टी में सुधार के ज़रिये इसे और बढ़ाया जा सकता है। बहरहाल 30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर-मि.मी. की उत्पादकता मानना ठीक ही है।

सांगली ज़िले में किए गए एक प्रयोग में देरी से बोवनी तथा कीटों के हमले के बावजूद 3 टन प्रति हैक्टर का उत्पादन हासिल हुआ। दूसरे वर्ष बेहतर बारिश और जैविक इनपुट की बदौलत उपज 6 टन प्रति हैक्टर हुई।

इसी प्रकार से बायोमास प्लॉट में 2-3 साल की अवधि तक प्रयोग किया गया। बेहतर प्रबन्धन वाले प्लॉट में उपज 10 से 12 टन प्रति हैक्टर रही। हमने कई स्थानों की जलाऊ लकड़ी वाले वृक्षों सम्बंधी जानकारी का भी विश्लेषण किया है। ये आंकड़े काफी अव्यवस्थित हैं तथा पानी उपयोग सम्बंधी जानकारी नहीं दी गई है। हमने जलवायु की परिस्थिति के आधार पर पानी की प्रयुक्त मात्रा का अनुमान लगाने की कोशिश की है। पता चलता है कि उपज 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर-मि.मी. होती है।

इसी तरह के अन्य अध्ययन भी देखे जा सकते हैं।

पानी की उत्पादकता : उपेक्षित मसला

जीवन निर्वाह के लिए 18 टन बायोमास की ज़रूरत निर्धारित करने के बाद हम अगले प्रश्न पर आते हैं कि 18 टन बायोमास पैदा करने के लिए कितना पानी चाहिए?

बुनियादी सेवा की गणना के लिए बायोमास को आधार बनाने का एक अहम कारण है। कारण यह है कि जब पानी की सीमित मात्रा का इस्तेमाल टिकाऊ पद्धति से किया जाता है तब बायोमास उत्पादकता का सीधा सम्बंध पौधे द्वारा उपयोग किए गए पानी से होता है। रूढ़िगत सोच में आमतौर पर भूमि की उत्पादकता पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है कि प्रति एकड़ या प्रति हैक्टर उत्पादन कितना है। परन्तु पानी उपयोग की उत्पादकता पर कतई ध्यान नहीं दिया जाता कि प्रति इकाई पानी उपयोग से कितना उत्पादन होता है।

दरअसल, असीमित बाहरी इनपुट पर आधारित उत्पादन प्रणाली में प्रति इकाई इनपुट उत्पादकता, टिकाऊ व पुनरुत्पादक प्रणाली के मुकाबले प्रायः कम होती है। मसलन, अध्ययनों से पता चला है कि इनपुट के टिकाऊ व सीमित उपयोग से आम किस्म की वनस्पति का उत्पादन 30-40 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर-मि.मी. (है. मि.मी. = 10,000 लीटर = 10 घन मीटर) होता है। लगभग सारे इलाकों में अच्छे वर्षों में बरसाती फसलें इस उत्पादकता स्तर तक पहुंच जाती हैं। इसके विपरीत पंजाब में गन्ना या धान जैसी फसलें या गर्मी की धान में इनपुट का बहुतायत से इस्तेमाल होता है। इनकी उत्पादकता क्रमशः 7 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर-मि.मी., 8.33 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर-मि.मी. तथा 7.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर-मि.मी. है। इससे ज़ाहिर है कि यदि हम पानी की उपलब्ध मात्रा के उपयोग से उत्पादकता को अधिकतम करना चाहते हैं तो हमें संसाधनों के सीमित व टिकाऊ उपयोग की पद्धति अपनानी होगी।

संसाधनों के उपरोक्तानुसार उपयोग के अन्तर्गत बुनियादी सेवा के लिए पानी की मात्रा की गणना हेतु हमने उत्पादकता 30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर-मि.मी. मानी है। दरअसल हमने पाया है कि लगभग सभी इलाकों में अच्छे वर्षों में सारी बरसाती फसलों की उत्पादकता इस स्तर को हासिल कर लेती है। यानी इस मान्यता का अर्थ यही है कि बुनियादी सुविधा के ज़रिये प्रतिवर्ष अच्छे वर्ष के समान उत्पादकता हासिल हो पाए। बुनियादी सुविधा की भूमिका ही यह है कि समूची इकोसिस्टम में विस्तृत रूप से 'अच्छे वर्ष' की परिस्थितियां बनी रहें।

विभिन्न क्षेत्रों में बुनियादी सुविधा की गणना

अब हमारे पास पर्याप्त मापदण्ड उपलब्ध हैं जिनके आधार पर गुजरात के विभिन्न इलाकों के लिए बुनियादी सुविधा हेतु ज़रूरी पानी की मात्रा की गणना की जा सकती है। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं गणना का आधार सम्बंधित इलाके की सामान्य आकार की जोत है तथा इतना पानी सुनिश्चित किया जाएगा कि 18 टन बायोमास पैदा हो सके तथा घरेलू ज़रूरतों के लिए पानी मिल सके।

आर्थिक सेवा का आकलन काफी आसान है। हमने मात्र यह किया है कि सरदार सरोवर परियोजना द्वारा मान्य पानी की मात्रा यानी 6,000 घन मीटर प्रति हैक्टर को स्वीकार कर लिया है।

बुनियादी सेवा की गणना का आधार यह है कि एक आम परिवार को 18 टन बायोमास की गुंजाइश मुहैया कराने के लिए कितना पानी लगेगा। ऊपर हम देख चुके हैं कि यदि सीमित संसाधनों का टिकाऊ ढंग से उपयोग किया तो प्रयुक्त पानी की उत्पादकता 30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर-मि.मी. होती है। अतः 18 टन बायोमास उत्पादन के लिए यह ज़रूरी है कि 600 हैक्टर-मि.मी. याने 6000 घन मीटर पानी की गारंटी हो।

पांच सदस्यों के एक सामान्य परिवार को घरेलू ज़रूरतों के लिए 500 लीटर प्रतिदिन पानी लगता है। लगभग इतना ही पानी पशुओं व अन्य कार्यों के लिए चाहिए। इस आधार पर प्रति परिवार प्रति वर्ष घरेलू पानी की ज़रूरत 400 घन मीटर आती है।

गणनाओं को स्पष्ट करने के लिए कच्छ का उदाहरण देखते हैं। कच्छ क्षेत्र की औसत वर्षा हमने 300 मि.मी. मानी है। 80 प्रतिशत विश्वसनीयता 200 मि.मी. बारिश की है। इस क्षेत्र की सामान्य जोत का आकार 2 हैक्टर माना गया है। कम व मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रों में हम मान सकते हैं कि कुल वर्षा का 60 प्रतिशत बायोमास उत्पादन में प्रयुक्त होता है। इस हिसाब से एक सामान्य जोत पर 80% विश्वसनीयता से कितना पानी बायोमास उत्पादन हेतु इस्तेमाल होगा इसकी गणना निम्नानुसार की जा सकती है

2 हैक्टर x 0.6 x 200 मि.मी. = 240 हैक्टर-मि.मी. = 2400 घन मीटर। यानी 18 टन उत्पादन क्षमता हासिल करने के लिए अतिरिक्त 3600 घन मीटर या 360 हैक्टर-मि.मी. पानी का प्रावधान करना होगा। इसे लगभग 4000 घन मी. मान सकते हैं तथा इसमें घरेलू ज़रूरत का पानी जोड़ दें तो कच्छ क्षेत्र के लिए बुनियादी सुविधा का परिमाण 4400 घन मीटर प्रति परिवार आता है।

इस तरह से गुजरात के विभिन्न क्षेत्रों के लिए बुनियादी सुविधा में पानी की मात्रा की गणना की गई है। तालिका 2.1 में ये आंकड़े दिए गए हैं।

तालिका 2.1

विभिन्न क्षेत्रों में बुनियादी सुविधा

	कच्छ	सौराष्ट्र	उत्तर गुजरात	शेष गुजरात
औसत वर्षा	300 मि.मी.	500 मि.मी.	600 मि.मी.	1000 मि.मी.
80% विश्वसनीयता वाली वर्षा	200 मि.मी.	300 मि.मी.	350 मि.मी.	650 मि.मी.
औसत जोत का आकार	2 हैक्टर	1.5 हैक्टर	1.5 हैक्टर	1.5 हैक्टर
वर्षा का उसी जगह इस्तेमाल*	2400 घन मीटर	2700 घन मीटर	3350 मीटर	5850 घन मीटर
पूरक पानी की मात्रा	3600 घन मीटर	3300 घन मीटर	2650 घन मीटर	150 घन मीटर
संशोधित व्यवस्था	4000 घन मीटर	3500 घन मीटर	3000 घन मीटर	2000 घन मीटर
पीने का पानी	400 घन मीटर	400 घन मीटर	400 घन मीटर	400 घन मीटर
कुल बुनियादी सुविधा	4400 घन मीटर	3900 घन मीटर	3400 घन मीटर	2400 घन मीटर

* (जोत x 0.6x80% विश्वसनीय वर्षा)

तालिका से ज़ाहिर है कि गुजरात के सूखा ग्रस्त क्षेत्रों को छोड़कर बाकी सभी क्षेत्रों में ज़रूरी पानी की मात्रा बहुत कम है। इससे पता चलता है कि इन इलाकों की अधिकांश ज़रूरतों की पूर्ति स्थानीय पानी संसाधन विकास के माध्यम से की जा सकती है। परन्तु इन इलाकों को पहले ही नर्मदा का पानी आवंटित किया जा चुका है। इस वक्त यह सामाजिक रूप से अस्वीकार्य होगा कि उक्त आवंटन निरस्त कर दिया जाए। इसलिए हमने बुनियादी सुविधा हेतु मात्र इतना पानी इन इलाकों को दिया है ताकि वर्षा में विषमता होने पर नमी के तनाव से बचाव हो सके। हमारा अनुमान है कि इसके लिए प्रति फसल तीन बार 40-40 मि.मी. पानी देना पर्याप्त होगा। इसके आधार पर इन इलाकों में बुनियादी सुविधा 2000 घन मीटर आती है।

विकल्प के सेवा क्षेत्र की गणना

यहां हम कच्छ इलाके के सेवा क्षेत्र की गणना बतौर उदाहरण करेंगे। कच्छ इलाके के लिए नर्मदा पानी का आवंटन 8 लाख एकड़ फुट = 100 करोड़ घन मीटर है। बाकी सारे इलाकों में हमने माना है कि नर्मदा के पानी के बराबर स्थानीय पानी भी उपलब्ध होगा। परन्तु कच्छ के सन्दर्भ में स्थानीय पानी का अनुपात हमने कम रखा है। यहां 3:5 के अनुपात में स्थानीय पानी व नर्मदा का पानी उपयोग होगा। अर्थात नर्मदा पानी के साथ प्रयुक्त किए जाने वाले स्थानीय पानी का परिमाण 100x3/5=60 करोड़ घन मीटर होगा। पानी की कुल उपलब्ध मात्रा 160 करोड़ घन मीटर होगी। हम मानते हैं कि खेतों पर यह पानी 70 प्रतिशत कार्य क्षमता से पहुंचेगा। (इस ऊंची कार्यक्षमता पर हम अलग से तब चर्चा करेंगे जब वैकल्पिक पानी वितरण तंत्र की बात करेंगे। संक्षेप में, सतही व भूमिगत पानी का एकीकृत

उपयोग तथा कम लागत के पाइपों द्वारा पानी वितरण इसके प्रमुख आधार हैं।) यानी खेतों पर पहुंचने वाले पानी की मात्रा 160x0.7 = 112 करोड़ घन मीटर होगी।

दो अर्ध सूखा क्षेत्रों की वर्षा के आंकड़ों के विश्लेषण के आधार पर हमारा निष्कर्ष है कि पानी की औसत उपलब्धता में से दो तिहाई पानी बुनियादी सुविधा हेतु उपलब्ध होगा। बहरहाल, 'शेष गुजरात' में हमारी मान्यता है कि अधिकांश बाहरी पानी का उपयोग बुनियादी सुविधा के लिए नहीं बल्कि आर्थिक सुविधा के लिए होगा। वहां हमारी मान्यता के अनुसार औसत पानी उपलब्धता में से एक-तिहाई पानी ही बुनियादी सुविधा में लगेगा।

क्या नर्मदा और स्थानीय पानी का अनुपात ठीक है?

शुरुआत में हमने प्रत्येक इलाके को मुहैया कराए जाने वाले नर्मदा के पानी तथा स्थानीय पानी का एक अनुपात निर्धारित किया था। वर्तमान स्थानीय भण्डार तथा वॉटरशेड उपचार के ज़रिये निर्मित नए भण्डार मिलकर इस अनुपात के साथ मेल खाना चाहिए। यह जांच करने के लिए पहले सेवा क्षेत्र का निर्धारण ज़रूरी था क्योंकि हमने माना था कि वॉटरशेड क्षेत्र सेवा क्षेत्र का दुगना होगा। अब हमने सेवा क्षेत्र की गणना कर ली है, तो स्थानीय पानी संसाधनों की उपलब्धता पर गौर किया जा सकता है।

यहां वॉटरशेड उपचार क्षेत्र को बुनियादी सेवा क्षेत्र का दुगना मानकर यही गणना करेंगे। वर्तमान में मौजूद जल भण्डारों की क्षमता के आंकड़े हम पहले ही दे चुके हैं। वॉटरशेड उपचार के ज़रिये भण्डारण क्षमता में जो वृद्धि होगी, उसे इसमें जोड़कर गणना का आधार बनेगा। इस मामले में उत्तर गुजरात के अपवाद को छोड़कर शेष इलाकों के बारे में माना जा सकता है कि उपचारित क्षेत्र पर गिरने वाली वर्षा का 10 प्रतिशत हमें अतिरिक्त सतही या भूमिगत जल भण्डार के रूप में उपलब्ध हो जाएगा। उत्तर गुजरात के बारे में उल्लेखनीय बात यह है कि यहां के सेवा क्षेत्र से लगे उत्तरी व पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र में भूमिगत जल भण्डार काफी कम है। अतः यहां गिरने वाली बारिश का काफी सारा पानी उत्तर गुजरात के सेवा क्षेत्र में भूजल पुनर्भरण हेतु मिल जाएगा। दरअसल इस इलाके में भूजल के प्रबन्धन की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण साबित होगी क्योंकि इस क्षेत्र में छोटे जल भण्डारों की उपलब्धता बहुत कम है। इसलिए हमने माना है कि इस इलाके में 15% अतिरिक्त बारिश का पानी उपलब्ध हो जाएगा। यह स्थानीय पानी तो नहीं कहा जा सकता मगर भौगोलिक परिस्थिति की वजह से स्थानीय रूप से उपलब्ध रहेगा। यह देखा जा सकता है कि उत्तर गुजरात के अलावा बाकी सारे क्षेत्रों में हमारी गणनाएं ठीक बैठती हैं। बहरहाल हमने उत्तर गुजरात के सन्दर्भ में भी कोई संशोधन नहीं किया है क्योंकि कमी की मात्रा बहुत नगण्य है। ज़रूरी हुआ तो बाद में संशोधन किया जा सकता है।

तालिका क्रमांक 2.2
सेवा क्षेत्र से दुगने क्षेत्र में वॉटरशेड उपचार के द्वारा उपलब्ध अतिरिक्त पानी संसाधन

संसाधन	कच्छ	सौराष्ट्र	उत्तर गुजरात	शेष गुजरात
वर्तमान सतही भण्डार (लाख एकड़ फुट)	4.1	16.0	3.5	9.5
वाटरशेड का उपचारित क्षेत्र (लाख हैक्टर)	6.8	21.6	24.7	11.6
अनुमानित बारिश (मि.मी.)	300	500	600	1000
अतिरिक्त स्थानीय संसाधन (लाख एकड़ फुट)	1.6	8.6	17.8	9.3
कुल स्थानीय संसाधन (लाख एकड़ फुट)	5.7	24.6	21.1	18.7
नर्मदा आवंटन (लाख एकड़ फुट)	8.0	24.0	24.0	16.0

उपरोक्तानुसार कच्छ में, खेतों पर पहुंचने वाले 112 करोड़ घन मीटर पानी में से 75 करोड़ घन मीटर बुनियादी सुविधा हेतु तथा 37 करोड़ घन मीटर आर्थिक सुविधा हेतु होगा।

कच्छ में प्रति 2 हैक्टर जोत पर बुनियादी सुविधा की मात्रा 4400 घन मीटर आंकी गई है। अतः बुनियादी सुविधा से लाभान्वित परिवारों की संख्या 75 करोड़ घन मीटर/4400 घन मीटर यानी करीब 1,70,000 होगी। यानी बुनियादी सुविधा का क्षेत्र 1,70,000 x 2 हैक्टर = 3,40,000 हैक्टर होगा। इसी प्रकार से आर्थिक सुविधा 6000 घन मीटर पानी को माना गया है। तब आर्थिक सुविधा क्षेत्र 37 करोड़ घन मीटर/6000 घन मीटर = 62,000 हैक्टर होता है।

विभिन्न इलाकों का अनुमानित सेवा क्षेत्र तालिका 2.3 में देखें।

तालिका 2.3
विभिन्न इलाकों में प्रस्तावित सेवा क्षेत्र

	कच्छ	सौराष्ट्र	उत्तर गुजरात	शेष गुजरात
आवंटित नर्मदा पानी	100 करोड़ घन मी. (8 लाख एकड़ फुट)	300 करोड़ घन मी. (24 लाख एकड़ फुट)	300 करोड़ घन मी. (24 लाख एकड़ फुट)	200 करोड़ घन मी. (16 लाख एकड़ फुट)
स्थानीय पानी संसाधन	60 करोड़ घन मी.	300 करोड़ घन मी.	300 करोड़ घन मी.	200 करोड़ घन मी.
कुल पानी	160 करोड़ घन मी.	600 करोड़ घन मी.	600 करोड़ घन मी.	400 करोड़ घन मी.
70% कार्य क्षमता के अनुसार खेतों पर पानी	112 करोड़ घन मी.	420 करोड़ घन मी.	400 करोड़ घन मी.	280 करोड़ घन मी
इसमें से बुनियादी सेवा	75 करोड़ घन मी.	280 करोड़ घन मी.	280 करोड़ घन मी.	93 करोड़ घन मी.
बुनियादी सेवा में प्रति परिवार पानी की मात्रा	4400 घन मी.	3900 घन मी.	3400 घन मी.	2400 घन मी.
लाभांवित परिवार	1,70,000	7,18,000	8,24,000	3,88,000
बुनियादी सेवा का रकबा (हैक्टर)	3,40,000	10,77,000	12,35,000	5,81,000
बुनियादी व आर्थिक सेवा का अनुपात	2:1	2:1	2:1	1:2
आर्थिक सेवा में कुल पानी की मात्रा	37 करोड़ घन मी.	140 करोड़ घन मी.	140 करोड़ घन मी.	187 करोड़ घन मी.
आर्थिक सेवा का रकबा (हैक्टर)	62,000	2,33,000	2,33,000	3,12,000
कुल सेवा क्षेत्र का रकबा (हैक्टर)	4, 02, 000	13, 10, 000	14, 68, 000	6, 90, 000
पूरी वैकल्पिक परियोजना का सेवा क्षेत्र				
बुनियादी सेवाः	32,33,000 हैक्टर (लाभांवित परिवार 21 लाख)			
आर्थिक सेवाः	8 , 40, 000 हैक्टर			

वैकल्पिक सेवा में फसल चक्र

हमने बुनियादी सेवा की योजना इस अनुसार बनाई है कि इसके द्वारा एक औसत परिवार को वैकल्पिक सेवा क्षेत्र में 18 टन बायोमास उत्पादन की गुंजाइश उपलब्ध हो जाए। परन्तु इसका उपयोग करके जीवन निर्वाह की विभिन्न ज़रूरतें पूरी करने के लिए आवश्यक होगा कि एक वैकल्पिक फसल चक्र की भी योजना बनाई जाए। योजना इस तरह बनानी होगी कि स्थानीय पहल व पसंद के लिए जगह रहे लेकिन साथ ही कुछ मापदण्डों का पालन भी सुनिश्चित किया जा सके।

हमारी दृष्टि में मोटे-मोटे तौर पर निम्नलिखित फसल चक्र अपनाया जा सकता है। इसका प्रतिपादन हमने 1.2 हैक्टर की जोत के आधार पर किया है।

क्षेत्रफल	उत्पादन
0.4 है. (1 एकड़)	खाद्यान्न फसलें अनाज, दालें, तिलहन आदि।
0.1 हैक्टर	खाद्यान्न फसलों के बीच हरी क्यारियां (ग्लिरिसिडिया, शेवरी तथा अन्य पेड़ और झाड़ियां जो काफी पत्तियां दें। इसमें उन पत्तीदार पेड़-पौधों, झाड़ियों की क्यारियां भी होंगी जो फसल को नाइट्रोजन उपलब्ध कराएंगी और कुछ हद तक चारा भी मिलेगा।
0.2 हैक्टर	कम पानी वाले फल और/या बाज़ार हेतु उत्पादन
0.1 हैक्टर	सब्ज़ियां - बाज़ार हेतु उत्पादन
0.4 हैक्टर	कृषि-वानिकी ईंधन, इमारती लकड़ी, चारा, पत्तियां वगैरह

वैकल्पिक फसल प्रणाली में भूमि का उपयोग तीन तरह से किया जाएगा। लगभग 1/3 हिस्सा खाद्यान्न फसलों के लिए, 1/3 हिस्सा कृषि वानिकी के लिए तथा शेष 1/3 हिस्सा फल-सब्ज़ी जैसी बिक्री योग्य उपज या इमारती लकड़ी, रेशे, औषधि पौधों वगैरह के लिए होगा।

किसान पहले अपनी कुल जोत से जितनी उपज लेते थे, बुनियादी सेवा प्राप्त हो जाने पर उससे कहीं ज़्यादा उपज दो-तिहाई क्षेत्र से ले सकेंगे। यानी बुनियादी सेवा के द्वारा यह संभव हो जाएगा कि वे उत्पादन में किसी घाटे या नुकसान के बगैर 1/3 क्षेत्र को स्थाई रूप से वनस्पति से ढका रख सकें। अर्थात वैकल्पिक प्रणाली में बुनियादी सेवा क्षेत्र का कम से कम 1/3 हिस्सा स्थाई रूप से पर्णाच्छादित होगा। बुनियादी सेवा के साथ शुरुआत से ही यह शर्त जोड़ना ज़रूरी है।

विकल्प की सामाजिक स्वीकार्यता

पिछले दस-पन्द्रह वर्षों में मैदानी स्तर पर विकास गतिविधियों में काफी परिवर्तन आया है। समता व टिकाऊपन के मुद्दों को काफी महत्व दिया जा रहा है तथा इस सन्दर्भ में सामाजिक अनुभव भी हुए हैं। हम लोग इनमें से कुछ अनुभवों में भागीदार भी रहे हैं तथा अन्य संगठनों के अनुभवों को भी देखा है। हमने इन दोनों के निष्कर्षों का लाभ

लिया है। इस आधार पर हमारा दृढ़ मत है कि जो विकल्प हमने सुझाया है वह सामाजिक दृष्टि से स्वीकार्य होगा। खासतौर से उन इलाकों के बारे में यह बात यकीनन कही जा सकती है जहां पानी के अधिकार अभी स्थापित नहीं हुए हैं तथा जहां उच्च इनपुट व पानी बहुल खेती का व्यापक प्रसार नहीं हुआ है। यहां हम इस सामाजिक अनुभव की एक मोटी रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे।

सबसे पहले एक ऐसी परिस्थिति का विवेचन करते हैं जहां उक्त शर्तें स्वीकार की जा चुकी हैं। पानी पंचायत एक ऐसा प्रयोग रहा है जिसने कई संगठनों को यह यकीन दिलाया है कि समतामूलक पानी वितरण की नीति प्रासंगिक होने के अलावा सामाजिक रूप से स्वीकार्य भी है। महाराष्ट्र के पुणे ज़िले के पुरन्दर तालुका में पानी पंचायत ने कई पानी उपयोगकर्त्ता समूहों का गठन किया है। ये समूह लिफ्ट योजनाओं के सन्दर्भ में बने हैं तथा इनका मुख्य सिद्धांत यह है कि सदस्यों के बीच पानी का बराबर-बराबर बंटवारा होना चाहिए। आगे चलकर ग्राम गौरव प्रतिष्ठान के तत्वावधान में इन्होंने वाटरशेड विकास का काम भी उठाया। इस काम का मूल सिद्धांत भी समता व टिकाऊपन है। इस काम से प्रेरित होकर महाराष्ट्र के सांगली ज़िले में मुक्ति संघर्ष नामक संगठन ने समता की अवधारणा को और विस्तार देते हुए काम उठाए। बलिराजा लोक बांध के क्षेत्र में पानी उपयोगकर्त्ता समूहों ने पानी के बराबर वितरण की अवधारणा में भूमिहीन मज़दूरों को भी शामिल किया है। यहां हमने जो फसल चक्र प्रस्तावित किया है वह दरअसल बलिराजा परियोजना में फसल चक्र निर्धारण सम्बंधी चर्चाओं में से ही उभरा है। इसी प्रकार के समूह तकारी परियोजना के कमान क्षेत्र के दस गांवों में बने हैं। तकारी परियोजना महाराष्ट्र में कृष्णा नदी पर एक बड़ी लिफ्ट सिंचाई परियोजना है। इन समूहों ने समतामूलक पानी वितरण के सिद्धांत को मंज़ूर किया है तथा उसी तरह का फसल चक्र अपनाया है। समूहों ने इस हेतु सिंचाई विभाग से संपर्क किया तथा विभाग ने सिद्धांततः इस बात को मंज़ूर कर लिया है कि पानी इस समूह को दिया जाएगा। एक गांव कमान क्षेत्र से ऊपर है। इसी सन्दर्भ में हमें यह पता चला कि 10 प्रतिशत पानी अपस्ट्रीम इलाकों को दिए जाने का प्रावधान मौजूद है। तीन गांवों में पंजीकरण आदि प्रक्रियाएं लगभग पूरी हो चुकी हैं तथा अन्य गांव भी इस दिशा में अग्रसर हैं।

कई अन्य परियोजनाओं में भी समता व टिकाऊपन के तत्व एवं तदनुसार उपयुक्त सामाजिक व्यवस्थाएं देखने को मिलती हैं, हालांकि उतने स्पष्ट रूप से नहीं जैसी कि पानी पंचायत या मुक्ति संघर्ष के प्रयोगों में देखी जा सकती हैं। मसलन रालेगांव सिद्धी में ज़ाहिर तौर पर इस रूप में समता के प्रति कोई निष्ठा नहीं है मगर यहां भी लोगों ने ऐसी व्यवस्था बनाई है कि वे कुछ निर्धारित कुओं से सामूहिक रूप से पानी लेते हैं तथा इसका नियमबद्ध ढंग से बंटवारा करते हैं। उन्होंने फसल सम्बंधी कुछ प्रतिबन्ध भी स्वीकार किए हैं। खासतौर से गन्ने जैसी पानी-खर्ची फसलें न उगाने की बात को स्वीकार किया गया है। मराठवाड़ा के एक अन्य गांव खुदावाड़ी में पानी उपयोगकर्त्ता 15 प्रतिशत पानी भूमिहीन व महिला समूहों के उपयोग हेतु छोड़ने पर राज़ी हुए हैं। ऐसे कई उदाहरण हैं जहां वाटरशेड विकास कार्य के दौरान लोगों ने फसल चक्र तथा चराई पर कई प्रतिबन्ध स्वीकार किए हैं। कोंकण के कई ऐसे गांव हैं जहां इस मुद्दे पर चर्चाएं चल रही हैं। लोगों की प्रतिक्रिया अनुकूल है तथा वे पानी संसाधनों के विकास कार्य के साथ-साथ उपयुक्त व्यवस्थाएं बनाने के काम में लगे हैं।

उपरोक्त उदाहरणों के अलावा भी बेशुमार ऐसे गांव हैं जहां पानी उपयोग में समता व टिकाऊपन के मुद्दों पर चर्चाएं चल रही हैं। हमने पाया है कि जिन इलाकों में अभी पानी पर अधिकार स्थापित नहीं हुए हैं तथा पानी एक

विकट ज़रूरत है, वहां लोग समतामूलक व्यवस्था बनाने को सहर्ष तैयार होते हैं। खासकर नव विकसित पानी संसाधनों को लेकर तो ऐसी व्यवस्थाएं आसानी से स्वीकार की जाती हैं। इससे स्पष्ट है कि जिन इलाकों में फिलहाल पानी संसाधन का व्यापक विकास अथवा सघन उपयोग शुरू नहीं हुआ है, वहां यह विचार आसानी से स्वीकार किया जाता है कि पानी जीवन निर्वाह का साधन है। यदि इस विचार को उपयुक्त संस्थागत व नीतिगत समर्थन मिले तो यह आसानी से स्वीकार होगा।

हमारा यह भी तजुर्बा रहा है कि जब एक बार लोग समतापूर्ण वितरण के विचार को पकड़ लेते हैं और उनकी पहलकदमी को पुख्ता समर्थन मिलता है तो वे ऐसी व्यवस्थाएं बनाने में काफी निपुण होते हैं जिनमें पानी सम्बंधी मौजूदा अधिकारों का ख्याल रखा जा सके तथा टकराव कम से कम पैदा हों। लगभग हर जगह लोगों ने किसानों के पूर्ववर्ती पानी अधिकारों का सम्मान किया है। ये अधिकार प्रायः इसलिए प्राप्त होते हैं क्योंकि कई किसान अपने खर्चे से संसाधनों का विकास कर चुके होते हैं। परन्तु लोग उन अतिरिक्त संसाधनों को लेकर दृढ़ होते हैं जो सामाजिक प्रयासों व खर्च से विकसित हुए हैं। लोगों का आग्रह होता है कि ये संसाधन सामूहिक संसाधन हैं तथा इनका वितरण समता के सिद्धांत से होना चाहिए। फर्ज़ कीजिए कि किसी किसान के पास एक कुआं है जिससे वह दो एकड़ के खेत में छह बार पानी देता है। उस किसान को दो एकड़ में छह बार पानी देने की अनुमति तो होगी मगर वॉटरशेड विकास के ज़रिये जो भी अतिरिक्त पानी उस कुएं में इकट्ठा होगा वह सामूहिक माना जाएगा।

यह भी स्पष्ट है कि इस तरह की नीति 'बाहरी' व्यक्तियों द्वारा थोपी नहीं जा सकती अपितु इसे लागू करने वाले लोग स्थानीय होंगे जो परिस्थिति को गहराई से समझते हों तथा मात्र औपचारिक सबूतों के ही मोहताज न हों। किसी सरकारी अफसर के समक्ष झूठे सबूत पेश करना आसान है मगर अपने गांववासियों के बीच ऐसा करना मुश्किल होगा। इसी वजह से पानी का बंटवारा और नियमन स्थानीय पानी उपयोगकर्त्ता समूहों के हाथ में रहना बेहतर है।

यहां यह बात भी गौरतलब है कि ऊपर वर्णित कई प्रयास ऐसे इलाकों में हुए हैं जहां बाहरी पानी उपलब्ध कराने की कोई बात नहीं थी। हमारा अनुभव यह है कि यदि बाहरी पानी का आश्वासन हो, तो किसान और भी आसानी से उपरोक्त शर्तें मानने को राज़ी हो जाते हैं।

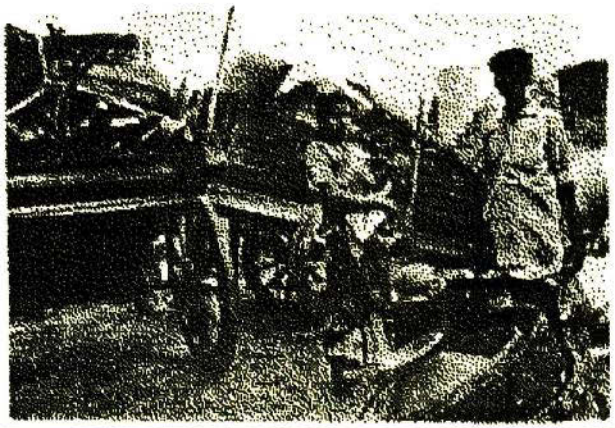

छोटे सिंचाई तंत्रों के प्रबंधन में पानी उपयोगकर्त्ताओं की निपुणता का अंदाज़ इसी बात से लगाया जा सकता है कि ऐसी कई लिफ्ट सिंचाई समितियां मौजूद हैं तथा लघु पैमाने पर सिंचाई के प्रबन्धन हेतु कई जगहों पर पानी उपयोगकर्त्ता समूह बनाने के प्रयास चल रहे हैं। इस सन्दर्भ में मुला माइनर 7 पर उल्लेखनीय कार्य हुआ है। इस काम का परिणाम यह हुआ है कि आज मुला परियोजना की एक पूरी वितरण शाखा की समितियों का फेडरेशन बनाने के प्रयास चल रहे हैं। इसी प्रकार से नासिक ज़िले में समाज परिवर्तन केन्द्र का ज़िक्र किया जा सकता है।

समता : आदर्श और वास्तविक

बुनियादी सेवा का प्रावधान औसत जोत के आधार पर किया गया है। इसलिए हो सकता है कि उससे कम ज़मीन वाले लोगों के सामने कुछ दिक्कतें आएं। या तो उन्हें और पानी लगेगा या और ज़मीन, या फिर उन्हें पानी उपयोग की कार्यक्षमता बढ़ानी होगी। एक समाधान यह हो सकता है कि उन्हें पानी उपयोग की कार्यक्षमता बढ़ाने में मदद दी जाए।

इसके लिए छोटे व सीमान्त किसानों हेतु उपलब्ध सरकारी योजनाओं का सहारा लिया जा सकता है।

बहरहाल, हमारा मानना है कि उन्हें ज़्यादा पानी या ज़्यादा ज़मीन उपलब्ध करवाना किसी केन्द्रीकृत सहायता योजना पर नहीं बल्कि पूरी तरह से स्थानीय संगठन पर निर्भर है।

स्थानीय स्तर पर इस मसले को कई ढंग से निपटाया जा सकता है। मसलन छोटे व सीमान्त किसान बड़े किसानों की असिंचित ज़मीन बटाई पर ले सकते हैं या कौली पर ले सकते हैं। परन्तु ऐसी कोई भी व्यवस्था इस बात पर निर्भर होगी कि पानी उपयोगकर्त्ता समूह कितना संवेदनशील व जागरूक है, उस क्षेत्र में लोगों में सामाजिक न्याय के प्रति कितनी निष्ठा है आदि। मुख्य तंत्र तथा उससे जुड़ी शर्तों की भूमिका मात्र इतनी होगी कि इस सबके लिए एक बुनियाद तैयार कर दे। अंतिम नतीजा तो लोगों की जागरूकता, कार्यवाही तथा संगठन पर निर्भर रहेगा।

पानी का टिकाऊ व समतामूलक उपयोग सुनिश्चित करने के लिए यह ज़रूरी है कि गांव या कई वाटरशेड मिलाकर बने ग्राम समूह या एक वाटरशेड के स्तर पर स्थानीय पानी प्रबन्धन का कामकाज उस इलाके के पानी उपयोगकर्त्ताओं के हाथ में रहे। बुनियादी सेवा और आर्थिक सेवा हेतु कुल निर्धारित पानी इन पानी उपयोगकर्त्ता समूहों (पा.उ.स.) को उपलब्ध करा दिया जाए। शर्त यह रहे कि वे न्यूनतम मापदण्डों का पालन करेंगे। इन मापदण्डों का पालन करते हुए पानी का आगे वितरण कैसे हो, यह पूरी तरह स्थानीय समूह पर छोड़ दिया जाना चाहिए। इसके ज़रिये यह संभव हो जाएगा कि स्थानीय समूह पानी वितरण के समतामूलक तरीके खोज सकेंगे और समाज के कमज़ोर तबकों (यथा महिलाओं) को ज़्यादा पानी अथवा भूमि आवंटित कर सकेंगे।

यहां प्रस्तुत विकल्प में हमने भूस्वामित्व की मौजूदा बनावट की सीमाओं को स्वीकार किया है। हमने कोशिश यह की है कि मौजूदा सीमाओं के तहत् सामाजिक न्याय तथा पानी के पुनरुत्पादक व समतामूलक उपयोग की संभावना तैयार कर दें। यदि भूमि संपत्ति सम्बंधों की भी पुनर्रचना की जा सके तो विकल्प और भी कारगर साबित हो सकता है बहरहाल उसे हम विकल्प लागू करने की पूर्व शर्त नहीं मानते।

अलबत्ता, इस तरह के एक उपाय पर गौर करना उपयोगी होगा। यह एक प्रथा रही है कि कमान क्षेत्र में सरकार द्वारा अर्जित ज़मीन में से पुनर्वास हेतु एक 'पूल' बना लिया जाता है। विस्थापित लोगों के लिए इस तरह का भू-अर्जन विकल्प में ज़रूरी न होगा। हमारा सुझाव यह है कि कमान क्षेत्र में इस तरह की अतिरिक्त ज़मीन का 'पूल' बनाया जाए तथा इसका उपयोग भूमिहीन व अन्य कमज़ोर तबकों के लिए किया जाए।

यह सब कौन करेगा? और कब?

अभी तक हमने जिस प्रणाली की बात की है उसे स्थापित करना और चलाना सरकार के बस की बात नहीं है। और न ही यह वांछनीय है। यह काम प्राथमिक रूप से आंदोलनों व जन संगठनों की ज़िम्मेदारी है। यह एक ऐसा काम है जिसे पर्यावरण आंदोलनों, जन विज्ञान आंदोलनों, विस्थापन विरोधी आंदोलनों, वैकल्पिक विकास आंदोलनों, जनोन्मुखी विकास के प्रति समर्पित गैर-सरकारी संगठनों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं तथा सामाजिक बदलाव के प्रति समर्पित राजनैतिक धाराओं, संगठनों तथा दलों को सामूहिक रूप से अंजाम देना होगा।

वैकल्पिक सेवा क्षेत्र में वाटरशेड के अनुरूप पानी उपयोगकर्त्ता समूहों (पाउस) का गठन किया जाएगा। सरकारी मशीनरी का काम मात्र इतना होगा कि पाउसों के बफर भण्डारों तक पानी पहुंचा दे और इस बात का ध्यान रखे कि बुनियादी सुविधा की न्यूनतम शर्तों का पालन किया जा रहा है। इसके आगे का सारा काम पाउसों को करना है। इस कार्य के लिए ज़रूरी धन सरकार इन समूहों को उपलब्ध करा देगी। अर्थात् पानी शुल्क में से पाउसों को प्रबन्धन हेतु ज़रूरी राशि दी जाएगी।

दूसरा ज़रूरी मुद्दा समय-सीमा से सम्बंधित है।

पानी उपयोग की इस प्रणाली को बनाने का प्रयास नर्मदा का पानी पहुंच जाने के बाद करने का कोई अर्थ नहीं होगा। नर्मदा के पानी के सेवा क्षेत्र में पहुंचने से पहले ही संस्थागत व संगठनात्मक ढांचा बनाने व स्थानीय पानी संसाधन विकसित करने के कार्य में काफी प्रगति हो जाना ज़रूरी है।

पुनर्वास व सम्बंधित मुद्दे

सबसे अहम् मुद्दा है पुनर्वास का। हमने इस मुद्दे की चर्चा को अब तक इसलिए टाला ताकि वैकल्पिक पानी उपयोग नीति की एक विस्तृत पृष्ठभूमि तैयार हो जाए। सबसे पहला कदम तो यही था कि डूब में कमी आए। प्रथम

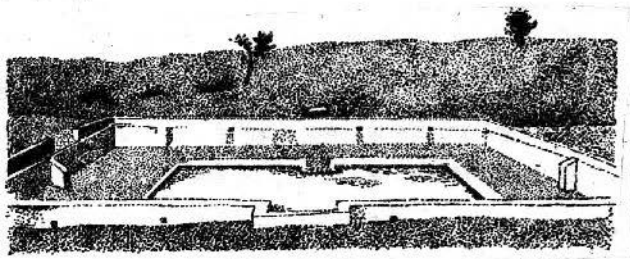

खण्ड में हम देख ही चुके हैं कि स.स.प्र. की पुनर्रचना के फलस्वरूप डूब क्षेत्र में 70 प्रतिशत की कमी आएगी और उजड़ने वाले गांवों की संख्या तो और भी कम हो जाएगी। परन्तु डूब के परिमाण में कमी आने का यही फायदा है कि समस्या काबू में आ जाती है। मगर इसके अन्य पहलुओं पर विचार करना तो ज़रूरी है।

विस्थापन का मसला सिर्फ इतना नहीं है कि विस्थापित लोगों को ज़मीन दे दी जाए। इसका सम्बंध कई अन्य मुद्दों से है। यहां हम दो महत्वपूर्ण मुद्दे उठाएंगे। पहला मुद्दा बांध से ऊपर (अपस्ट्रीम) क्षेत्र के विकास का है और दूसरे मुद्दे का सम्बंध आदिवासियों व जंगल से है।

हम पहले ही देख चुके हैं कि बड़ी परियोजनाओं में 'पुनर्वास' का अर्थ यही होता है कि लोगों को डूब क्षेत्र से उजाड़ा जाना। इसकी मूल वजह यह है कि रूढ़िगत सिंचाई परियोजनाओं का कमान क्षेत्र गुरुत्व कमान होता है। लिहाज़ा सिंचाई सिर्फ उन क्षेत्रों को मिल पाती है जो बांध से नीचे हों। अपस्ट्रीम क्षेत्र बांध के लाभों के दायरे से बाहर ही रह जाते हैं। इसका कारण यह है कि रूढ़िगत सोच में पानी को पम्प करने में ऊर्जा खर्च करने के विरुद्ध एक गहरा पूर्वाग्रह है। ऊर्जा के मुद्दे पर हम अलग से विचार करेंगे। परन्तु मान्य सामाजिक न्याय का तकाज़ा है कि हर परियोजना में अपस्ट्रीम क्षेत्रों के लिए पानी की एक न्यूनतम मात्रा का प्रावधान होना चाहिए। आखिरकार यही क्षेत्र तो परियोजना का सर्वाधिक भार वहन करते हैं। जितनी बड़ी परियोजना हो, उतनी ही यह बात महत्वपूर्ण हो जाती है।

यदि अपस्ट्रीम इलाकों के लिए पानी का प्रावधान रखा जाए तो यह संभव हो जाता है कि लोगों को पूरी तरह उनके इलाके से उजाड़े बगैर उनका पुनर्वास किया जा सके। इस इलाके से उनके आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक सम्बंध होते हैं। सरदार सरोवर में इन संभावनाओं पर कतई विचार नहीं किया गया है। दरअसल यदि हम महाराष्ट्र सरकार के निर्देशों के अनुसार आगे बढ़ें, तो कम से कम 10 प्रतिशत पानी इन इलाकों के लिए रखा जाना चाहिए।

यदि इस तरह से पानी आंवटन किया जाए, तो गुजरात के 90 लाख एकड़ फुट में से 10 लाख एकड़ फुट पानी की ज़रूरत इस कार्य में होगी। गुजरात के सेवा क्षेत्र में तद्नुसार कटौती हो जाएगी। परन्तु फिलहाल हमने एक अन्य विकल्प चुना है। इस विकल्प का चुनाव हमने हिचकते हुए किया है क्योंकि दरअसल इस मुद्दे पर निर्णय विचार विमर्श की प्रक्रिया के ज़रिये होना लाज़मी है। चूंकि अधिकांश अपस्ट्रीम क्षेत्र मध्यप्रदेश के हिस्से में आता है और चूंकि मप्र. द्वारा अपने हिस्से के पानी का उपयोग संभव नहीं दिखता इसलिए हमने अपस्ट्रीम क्षेत्र हेतु पानी मप्र. के हिस्से में से लिया है। परन्तु इसकी पूरी लागत गुजरात को वहन करना होगी क्योंकि वही परियोजना का मुख्य हितग्राही है।

पुनर्वास के लिए ज़मीन

बुनियादी सेवा तथा पुनर्वास के लिए हमें उस इलाके को चुनना होगा जो डूब क्षेत्र के आदिवासियों के सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश का हिस्सा है। इसे प्रभावित क्षेत्र मान सकते हैं। हमने इसे 1 लाख हैक्टर माना है। सबसे पहले हमें इस बात की गणना करनी होगी कि विस्थापित लोगों के जीवन निर्वाह हेतु कितनी ज़मीन लगेगी।

अल्वारेज़ और बिल्लोरे द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार सरदार सरोवर परियोजना का डूब क्षेत्र करीब 39,000 हैक्टर है जिसमें से 13,700 हैक्टर जंगल बताया गया है तथा करीब 11,300 हैक्टर खेती है। हो सकता है कि जंगल

के नाम पर दर्शाई गई कुछ ज़मीन पर अतिक्रमण हो चुका हो और आदिवासी इसका उपयोग जीवन निर्वाह के लिए करते हों। यदि सरसरी तौर पर अनुमान लगाना हो, तो झाबुआ ज़िले के अपने अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं कि कुल अतिक्रमित भूमि (कृषि भूमि के नाम से दर्ज भूमि का) 40 प्रतिशत तक हो सकती है। इसमें से अधिकांश जंगल ज़मीन होगी। यदि यही अनुपात विकल्प के स्थायी डूब क्षेत्र पर भी लागू किए जाएं, तो कुल स्थायी डूब यानी 10,800 हैक्टर में से 4,430 हैक्टर (करीब 5,000 हैक्टर) पर आदिवासी अपने जीवन निर्वाह के लिए सीधे निर्भर होंगे। इसी प्रकार से स्थायी डूब क्षेत्र में 2,500 हैक्टर अतिक्रमण मुक्त जंगल होगा।

हम यह भी मान लेते हैं कि पुनर्वास के लिए ज़रूरी ज़मीन का क्षेत्रफल वास्तविक कृषि ज़मीन से दुगना होगा क्योंकि पुनर्वास के लिए अन्य ज़रूरी इंतज़ाम भी करना होंगे। यानी पुनर्वास के लिए लगभग 10,000 हैक्टर ज़मीन लगेगी। इसके लिए हमारा प्रस्ताव है कि पुनर्वास हेतु झाबुआ, धार, धुले जैसे ज़िलों में अतिक्रमण मुक्त जंगल ज़मीन का इस्तेमाल किया जाए। ऐसी ज़मीन मौजूद है। पुनर्वास के लिए जंगल ज़मीन दिया जाना एक नाजुक मसला है। हम इस पर दो दृष्टिकोणों से विचार करेंगे - एक सरकार के दृष्टिकोण से और दूसरा पर्यावरण के दृष्टिकोण से।

जहां तक सरकार का सवाल है, सो वह तो परियोजना के लिए 13,700 हैक्टर जंगल डुबाने को तैयार ही है, जिसमें से काफी सारा अच्छी क्वालिटी का जंगल है। इसके एवज़ में यदि विकल्प को मंजूर किया जाता है तो भी कुल जंगल 12,500 हैक्टर ही लगेगा। यानी 2,500 हैक्टर तो डूब में जाएगा और 10,000 हैक्टर अतिक्रमण मुक्त जंगल पुनर्वास के काम आएगा। यह 10,000 हैक्टर जंगल 1,00,000 हैक्टर प्रभाव क्षेत्र में से ढूंढना होगा तथा यह कम गुणवत्ता वाला जंगल भी हो सकता है। ऐसे में सरकार के पास तो इसके खिलाफ कोई दलील नहीं है।

तो हम पर्यावरण के मुद्दे पर गौर करते हैं। यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि यहां हम आसपास के इलाके के सबसे निम्न क्वालिटी के अतिक्रमण मुक्त जंगल की बात कर रहे हैं। झाबुआ, धार व धुले इन तीन ज़िलों में मिलाकर 2 लाख हैक्टर क्षेत्र जंगल ज़मीन के रूप में वर्गीकृत है। अकेले झाबुआ ज़िले में यह क्षेत्र 1 लाख हैक्टर है। जिस 10,000 हैक्टर की हम बात कर रहे हैं, वह दरअसल तीन ज़िलों के जंगल का मात्र 5 प्रतिशत है।

गौरतलब है कि हम बांध से ऊपर के प्रभावित क्षेत्र में बुनियादी सेवा देने की बात के आधार पर आगे बढ़ रहे हैं। यदि हम यह मानें कि इसमें से बुनियादी सेवा 70,000 हैक्टर में होगी तो इसका अर्थ यह होगा कि इस इलाके में 23,000 हैक्टर क्षेत्रफल पर स्थायी वनस्पति आच्छादन रहेगा। इसके आलावा इससे क्षेत्र के आदिवासियों को जीविका का आधार भी मिलेगा। ये दोनों बातें महत्वपूर्ण हैं।

हालांकि उपरोक्त 23,000 हैक्टर पर स्थायी वनस्पति आच्छादन को जंगल नहीं कहा जा सकता परन्तु इकोसिस्टम की दृष्टि से इसका अपना महत्व है। कुछ हद तक यह घटिया क्वालिटी के 10,000 हैक्टर जंगल की भरपाई करेगा। दूसरी बात यह है कि इससे पूरा इकोसिस्टम एक उच्चतर स्थिति में पहुंच जाएगा।

आम तौर पर इस बात को अनदेखा किया जाता है कि आदिवासियों द्वारा जंगल का अतिदोहन जीविका के दबाव में किया जाता है, चाहे वह लकड़ी बेचकर हो या जंगल ज़मीन पर अतिक्रमण करके। दरअसल जंगल रक्षा का सबसे उम्दा उपाय आदिवासियों को जीविका के संसाधन सुनिश्चित करना है। इस बात की प्रायः उपेक्षा की जाती है।

अलबत्ता इसके पूरे लाभ प्राप्त करने के लिए दो और कदम उठाने होंगे। हम मानते हैं कि बुनियादी सेवा के ज़रिये जीविका सुनिश्चित करने के साथ-साथ जंगल का पूरा नियंत्रण व प्रबन्धन आदिवासियों को सौंप दिया जाए तथा निजी ज़रूरत के लिए जंगल के दोहन का पूरा अधिकार उन्हें मिले और जंगल को सफा काटने (क्लियर फेलिंग) पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगे, चाहे वह जंगल विभाग द्वारा हो या ठेकेदार द्वारा। याने विकल्प में 12,500 हैक्टर जंगल का नुकसान, जिसमें से अधिकतर घटिया क्वालिटी का होगा, एक तरह का दूरगामी निवेश होगा जिससे भविष्य में जंगल संरक्षण की गारंटी तथा स्थाई वनस्पति आच्छादन सुनिश्चित होगा।

बांध के ऊपरी क्षेत्र तथा विस्थापन से सम्बंधित लागत

हमने पुनर्वास को डूब क्षेत्र से लगे एक लाख हैक्टर क्षेत्र की समस्या के हिस्से के रूप में देखा है। हम यह मानक चल रहे हैं कि इस क्षेत्र में 60,000 हैक्टर को बुनियादी सेवा मुहैया कराई जाएगी तथा इसके अलावा 10,000 हैक्टर पुनर्वास के लिए लगेगी। याने कुल 70,000 हैक्टर क्षेत्रफल को बुनियादी सेवा प्राप्त होगी।

बुनियादी सेवा की लागत निकालने के लिए हम 1.5 हैक्टर औसत जोत वाले मॉडयूल को आधार बनाएंगे। यह इलाका मध्यम बारिश वाला इलाका है। लिहाज़ा प्रति 1.5 हैक्टर पर 2400 घन मीटर पानी की बुनियादी सेवा ज़रूरी होगी।

खेतों पर उपलब्ध कराए जाने वाले पानी की मात्राः

(70,000/1.5) x 2400 घन मीटर = 1120 लाख घन मीटर

यदि पानी पहुंचाने की कार्यक्षमता 70% मानी जाए, तो खेतों पर 1120 लाख घन मीटर पानी पहुंचाने के लिए स्रोत से 1120 x 70/100 = 1600 लाख घन मीटर पानी छोड़ना होगा।

इस इलाके की लहरदार बनावट को देखते हुए ऐसा लगता है कि स्थानीय पानी संसाधन का विकास करने के बावजूद भण्डारण क्षमता सीमित ही रहेगी। इसलिए स्थानीय स्रोतों का अंश 50 प्रतिशत मानने की बजाय हमने इसे मात्र 25 प्रतिशत ही माना है। यह भी ज़ाहिर है कि ज़रूरी पानी की मात्रा काफी कम है। इतनी मात्रा नर्मदा के मानसून पश्चात् बहाव में से आसानी से उपलब्ध कराई जा सकती है। स्थानीय भण्डारण की कम क्षमता के मद्देनज़र हमने यह माना है कि ये स्थानीय भण्डार पहली बार स्थानीय रूप से उपलब्ध पानी से भर जाएंगे तथा बाद में इन्हें तीन बार नर्मदा के पानी से भरना होगा। लिहाज़ा परिस्थिति कुछ यों होगीः

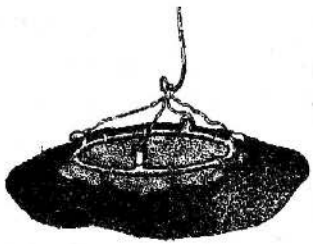

स्थानीय स्रोतों से पानी : 400 लाख घन मीटर (35,000 एकड़ फुट)।

नर्मदा पानी : 1200 लाख घन मीटर (1 लाख एकड़ फुट)। नर्मदा पानी में मध्यप्रदेश के हिस्से की तुलना में यह मात्रा नगण्य ही है।

प्रभाव क्षेत्र में ज़रूरी कुल भण्डारण क्षमता 400 लाख घन मीटर।

5 रुपये/घ. मी. की दर से स्थानीय भण्डारों पर कुल खर्च 20 करोड़ रुपये।

बहरहाल, पानी को इन भण्डारों तक पहुंचाने के लिए काफी लिफ्ट करना होगा। यदि हम मानें कि औसतन पानी को 100 मीटर की ऊंचाई तक लिफ्ट करना होगा तो (पम्प की कार्यक्षमता 80 प्रतिशत मानकर) कुल ऊर्जा की खपत 420 लाख युनिट होगी। इसके लिए 42 मेगावॉट पॉवर की ज़रूरत होगी। प्रति मेगावॉट पम्प पर 12 करोड़ रुपये की दर से पम्प पर कुल खर्च लगभग 50 करोड़ रुपये होगा।

इस पानी को (1000 घण्टों में) लक्ष्य तक पहुंचाने के लिए लगभग 35 क्यूमेक का बहाव ज़रूरी होगा। पूरे पानी का उपयोग 50 किलोमीटर के दायरे के अन्दर ही होगा याने 1750 क्यूमेक किलोमीटर के तुल्य नहरें बनानी होंगी।

अतः नहर की अधिकतम लागत, 1750 x 50,000 = 8.75 करोड़ रुपये या लगभग 9 करोड़ रुपये से कम ही रहेगी।

याने कुल लागत 79 करोड़ या करीब 80 करोड़ के आसपास बैठेगी।

वॉटरशेड विकास तथा वितरण तंत्र की लागत हम इसमें तब जोड़ देंगे जब हम 70,000 हैक्टर के इस बुनियादी सेवा क्षेत्र को समूचे बुनियादी सेवा क्षेत्र में जोड़कर देखेंगे।

अपस्ट्रीम क्षेत्र विकास का एक अन्य नज़रिया

हमने उपरोक्त विश्लेषण में एक लाख हैक्टर प्रभावित क्षेत्र मानकर सारी गणनाएं कीं। परन्तु अपस्ट्रीम विकास हेतु क्षेत्र का निर्धारण और कई तरीकों से किया जा सकता है। जैसे यदि हम यह मानें कि किसी भी परियोजना का 10 प्रतिशत पानी अपस्ट्रीम क्षेत्र के लिए रखा जाएगा तो सरदार सरोवर के मामले में यह 9 लाख एकड़ फुट आएगा। इस मात्रा के आधार पर गणनाएं करने से निष्कर्ष कुछ और आएंगे।

आदिवासी एकता परिषद् के कार्यकर्त्ताओं के साथ चर्चा के दौरान एक अन्य नज़रिया व शुरुआती बिन्दु उभरकर आया। उनकी दलील है कि सरकार इस समय पुनर्वास व अपस्ट्रीम क्षेत्र विकास पर 1000 करोड़ रुपए खर्च करने को तैयार है। दरअसल यदि वर्तमान में घोषित मापदण्डों के अनुसार पुनर्वास प्रक्रिया चले, जिसके तहत् सरकार बाज़ार भाव से ज़मीन खरीदकर विस्थापितों को देगी, तो 1000 करोड़ तो इसी में खप जाएगा। और यह भूस्वामित्व का अनुत्पादक हस्तांतरण मात्र होगा। उपरोक्त कार्यकर्त्ताओं का मत है कि कुल लागत 1200 करोड़ रुपए होगी। अतः वे मानते हैं कि अपस्ट्रीम विकास कार्य की गणना के लिए यह शुरुआती आंकड़ा होना चाहिए। अपस्ट्रीम विकास कार्य में डूब प्रभावितों का पुनर्वास शामिल है। हम इसकी चर्चा आगे करेंगे।

समतामूलक पानी वितरण तंत्र की लागत

पहले खण्ड में केन्द्रीय परिवहन तंत्र की चर्चा के दौरान हमने केन्द्रीय फीडर नहर नेटवर्क का ब्यौरा दिया था। इसमें बराज, बड़ी क्षमता वाली फीडर नहरें तथा कच्छ व सौराष्ट्र हेतु तथाकथित चक्राकार (गारलैण्ड) नहरें थीं और इनमें से शुरू होने वाली उप-फीडर नहरें थीं। यहां अब हम वितरण व डिलीवरी तंत्र के शेष हिस्सों की चर्चा करेंगे।

समतामूलक पानी वितरण की लागत

विकल्प का कुल सेवा क्षेत्र 41 लाख हैक्टर है तथा कुल लाभांवित परिवार 21 लाख हैं। यानी प्रति परिवार सेवा क्षेत्र लगभग 2 हैक्टर है। अर्थात 10,000 रुपए प्रति परिवार लागत को 5000 रुपए प्रति हैक्टर भी माना जा सकता है। इसकी लागत की गणना निम्नानुसार की जा सकती है।

नेटवर्क के इस हिस्से की शुरुआत 15 कि.मी. लम्बी सादे पलस्तर वाली चैनलों से होती है। जिन इलाकों का ढलान तेज़ है वहां यह लम्बाई 10 कि.मी. तक हो सकती है। इन चैनलों की क्षमता करीब 2 क्यूमेक होगी तथा इनमें नर्मदा और/या स्थानीय भण्डार का पानी ले जाया जा सकता है। इन चैनलों का उपयोग स्थानीय सतही भण्डारों और/या भूमिगत भण्डारों को भरने के लिए भी किया जा सकता है। हमारा अनुमान है कि जिन इलाकों में क्रॉस स्लोप्स काफी हैं वहां स्थानीय/बफर भण्डार की पायदानों वाले कुदरती प्रवाह का काफी महत्व होगा। जिन इलाकों में क्रॉस स्लोप्स कम हैं वहां बेहतर यह होगा कि भूजल भण्डारों को भर लिया जाए और बाद में इनमें से पानी को पम्प करके स्थानीय या बफर भण्डारों अथवा तालाबों में डाला जाए।

15 कि.मी. चैनल की स्टैण्डर्ड लें, तो परिमिति 4.4 मीटर होगी, आड़ी काट का क्षेत्रफल 2 वर्ग मीटर होगा तथा पानी का वेग 1 मीटर प्रति सेकण्ड होगा। 40 रुपए प्रति वर्ग मीटर की दर से पलस्तर की लागत 40 x 4.4 मीटर = 176 रुपए प्रति मीटर होगी। खुदाई/ कच्चे निर्माण की लागत 2 वर्गमीटर x 20 रुपए प्रति घन मीटर = 40 रुपए प्रति मीटर आएगी। यानी कुल लागत 216 रुपए प्रति मीटर (लगभग 225 रुपए प्रति मीटर) होगी। यदि हम ले आउट में किफायत करें और खुदी हुई मिट्टी के कुछ हिस्से का उपयोग किनारों की ऊंचाई बढ़ाने हेतु करें, तो लागत और कम की जा सकती है। पूरी 15 कि.मी. की चैनल की लागत 15000 x 225 = 33,75,000 रुपए आती है। बड़ी फीडर नहरों के विपरीत ये चैनल ज़्यादा लम्बी अवधियों के लिए चालू रहेंगी। हम मान रहे हैं कि ये 2400 घण्टे प्रति वर्ष चालू रहेंगी (120 दिन, 20 घण्टे प्रतिदिन या 180 दिन 13.3 घण्टे प्रतिदिन)। इन चैनल की औसत डिलीवरी 4300 घन मीटर प्रति हैक्टर मानें तो इनका कुल सेवा क्षेत्र होगा :

2400 x 2 x 3600/ 4300 = 4018 हैक्टर या कहें 4000 हैक्टर

अत: प्रति हैक्टर चैनल लागत

33, 75, 000/ 4000 = 844 यानी लगभग 850 रुपए

समतामूलक वितरण तंत्र की कम लागत वाली पाइप डिलीवरी प्रणाली को पानी या तो स्थानीय या बफर भण्डार से मिलेगा या इन चैनलों से मिलेगा। गणना के लिए यहां 330 हैक्टर मॉड्यूल पर गौर किया गया है। इसमें एक केन्द्रीय कम दबाव वाला मुख्य पाइप होगा जिसका व्यास 500 मि.मी. तथा लम्बाई 1.25 कि.मी. होगी। इस मुख्य पाइप में से 250, 750 तथा 1250 मीटर की दूरी पर शाखाएं निकलेंगी। ये शाखा पाइप 300 मि.मी. व्यास के होंगे तथा इनकी लम्बाई 2 कि.मी. होगी। इन 300 मि.मी. वाले पाइपों में से उपयुक्त स्थानों पर 250 मीटर के होज़ पाइप (चलित) लगे

स्थानीय तंत्र का एकदम सटीक निर्धारण करना तो हमारे बूते के बाहर है। अत: हम यहां एक ऐसी ग्रिड की रूपरेखा दे रहे हैं जो लागत की दृष्टि से अधिकतम है। हम अधिकतर कारकों को ध्यान में रखकर ही इस ग्रिड की रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे।

आपको याद होगा कि उक्त ग्रिड 42 कि.मी. लम्बी उप-फीडर नहर से शुरू होती है। केन्द्रीय परिवहन तंत्र की फीडरों व उप-फीडरों में सिर्फ नर्मदा का पानी बहेगा। अब हम ग्रिड के उस हिस्से का विवरण देंगे जो स्थानीय पानी व बाहरी पानी को मिले-जुले रूप में स्थानीय उपयोगकर्त्ता तक पहुंचाता व वितरित करता है।

सबसे पहले हम 42 कि.मी. लम्बी उप-फीडर में से निकलने वाली 15 कि.मी. की चैनलों की बात करेंगे। इन चैनलों में नर्मदा पानी भी हो सकता है और स्थानीय पानी भी या दोनों भी। पानी का मिश्रण इन चैनलों में हो सकता है या स्थानीय सतही भण्डारों में हो सकता है या इन चैनलों के अन्तिम छोर पर भूजल में हो सकता है ।

होंगे। इनकी मदद से 330 हैक्टर क्षेत्र तक पानी पहुंचाया जाएगा। यह पानी 0.1 हैक्टर की छोटी-छोटी क्यारियों में डाला जाएगा। फिलहाल सारी गणनाएं इसी बुनियादी ग्रिड के आधार पर की गई हैं। बलिराजा बांध के पाइपलाइन तंत्र के अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं कि 500 मि.मी. व्यास की पाइपलाइन 200 रुपए मीटर तथा 300 मि.मी. व्यास की पाइपलाइन 100 रुपए मीटर होगी। लिहाज़ा पाइप की लागत -

1200 x 200 + 3 x 2000 x 100 = 6, 24, 000 रुपए

अर्थात् प्रति हैक्टर पाइप की लागत

6,24,000/ 330 = 1890 या करीब 2000 रुपए प्रति हैक्टर

समतामूलक वितरण हेतु आधे पानी को औसत 40 मीटर ऊंचाई तक लिफ्ट करना होगा। प्रति हैक्टर औसत पानी 2500 घन मीटर होगा जैसा कि ऊपर कहा गया। हम 2400 घण्टे संचालन मान रहे हैं। यदि कार्यक्षमता 66% मानें, तो पॉवर की ज़रूरत निम्नानुसार होगी

$$\frac{(1250 \times 1000) \text{ कि.ग्रा.} \times 40 \text{ मीटर}}{(2400 \times 3600) \text{ सेकण्ड} \times 100 \text{ कि.ग्रा.- मी ./ किलोवॉट-सेकण्ड}} = 0.088 \text{ किलोवॉट / हैक्टर}$$

यदि इन कम क्षमता वाले पम्प की लागत 5000 रुपए प्रति किलोवॉट लें, तो पम्प की लागत

0.088 x 5000 = 440 या करीब 500 रुपए / हैक्टर

जो क्षेत्र इतने बड़े-बड़े निरंतर क्षेत्र नहीं होंगे वहां हम छोटे क्षेत्र के अनुरूप छोटी ग्रिड का उपयोग करेंगे। प्रति हैक्टर लागत वही रहेगी। इन छोटे क्षेत्रों को सुविधा देने के लिए अतिरिक्त बफर भण्डार की ज़रूरत पड़ेगी। हालांकि इस तरह के अतिरिक्त बफर भण्डारों की ज़रूरत सेवा क्षेत्र के बहुत ही छोटे हिस्से में पड़ेगी मगर हम यहां गणना के लिए पूरे क्षेत्र में एक जैसे बफर भण्डार मानकर चलेंगे। हमारा अनुमान है कि प्रति चार परिवारों यानी करीब 8 हैक्टर पर 200 घन मीटर के पूर्णत: पलस्तर युक्त बफर भण्डार/तालाब की ज़रूरत होगी। इसकी लागत 20 रुपए प्रति घन मीटर मानें तो भण्डार की लागत

200 x 20/8 = 500 रुपए / हैक्टर

अत: समतामूलक पानी वितरण तंत्र की कुल लागत

= 15 कि.मी. चैनल की लागत + पाइपलाइन की लागत + पम्प की लागत + बफर भण्डार की लागत

= 850 + 1800 + 500 + 500

= 3600 रुपए प्रति हैक्टर

अर्थात् 4000 रुपए प्रति हैक्टर से कम।

यह प्रति हैक्टर बुनियादी सेवा क्षेत्र में 5000 रुपए प्रति हैक्टर के अनुरूप होगी।

इसके बाद हम दो परिस्थितियों की कल्पना करते हैं। पहली परिस्थिति वह है जहां ओवरलैप चैनल या स्थानीय स्रोत से पानी को न्यून लागत पाइपशुदा डिलीवरी तंत्र में डाला जाता है और यह तंत्र मूलत: गुरुत्व बहाव के ज़रिये पानी को आसपास के छूते हुए क्षेत्र में पहुंचाता है। दूसरी परिस्थिति वह है जहां नियोजन इस तरह नहीं हो पाता कि सेवा क्षेत्र निरंतर रहे। इस परिस्थिति में पानी को खेत में बने 200 घन मीटर क्षमता वाले तालाबों में पहुंचा दिया जाएगा। ये तालाब चन्द परिवारों के सेवा क्षेत्र हेतु बफर भण्डार का काम करेंगे।

हमने माना है कि समतामूलक पानी वितरण तंत्र की लागत प्रति परिवार 10,000 रुपए आएगी। दिक्कत यह है कि फिलहाल यह नहीं कहा जा सकता कि कौन सा सेवा क्षेत्र निरंतर भूखण्ड होगा और कौन सा नहीं। इसलिए हमने हर इलाके के लिए दोनों तरह की लागत जोड़ ली है। यानी हर क्षेत्र के लिए बफर भण्डारों की लागत जोड़ी गई है।

हालांकि इनकी ज़रूरत मात्र उन इलाकों में पड़ेगी जहां सेवा क्षेत्र एक निरंतरता लिए हुए नहीं है। अर्थात् लागत में कटौती की काफी गुंजाइश है। इस लागत में 15 किमी. चैनल तथा ज़रूरी पम्पों की लागत भी शामिल है। हमारा अनुमान है कि इस प्रणाली की लागत 10,000 रुपए प्रति परिवार होगी (देखें बॉक्स)।

टेक्नॉलॉजी का चुनाव तथा उसके परिणाम

किसी भी विकास परियोजना, प्रयास या स्कीम के क्रियान्वयन में पहली चीज़ इन्फ्रास्ट्रक्चर होती है। इन्फ्रास्ट्रक्चर से तात्पर्य उन प्रत्यक्ष या परोक्ष सुविधाओं से है जो परियोजना को अमली जामा पहनाने के लिए ज़रूरी हैं। मसलन परियोजना तभी काम करेगी जब नहरें खोदी जाएं, खेत नालियां बनाई जाएं, सड़कें बनाई जाएं, बांध निर्माण हो जाए, भवन बन जाएं - वगैरह-वगैरह। इन्फ्रास्ट्रक्चर तथा इन्फ्रास्ट्रक्चर टेक्नॉलॉजी अपने तईं सेवा की प्रकृति, उसकी गुणवत्ता, उसकी पहुंच तथा कई अन्य पहलुओं पर असर डालती हैं। एक बार निर्मित हो जाएं, तो इनके द्वारा आरोपित सीमाओं को लांघना बहुत मुश्किल होता है। इसी प्रकार से स्थापना के चरण के दौरान यह इस बात पर भी गहरा असर डालती हैं कि रोज़गार और आमदनी कहां व किसके लिए पैदा होंगे।

संक्षेप में रूढ़िगत इन्फ्रास्ट्रक्चर टेक्नॉलॉजी के प्रमुख लक्षण निम्नांकित हैं :

(i) बहुत ऊर्जा खर्ची सामग्री व प्रक्रियाएं,

(ii) स्थानीय सामग्री व संसाधनों का निहायत सीमित इस्तेमाल,

(iii) रोज़गार व आमदनी में स्थानीय हिस्सेदारी न्यूनतम।

वैकल्पिक नज़रिये में इन्फ्रास्ट्रक्चर टेक्नॉलॉजी के चुनाव में जागरूकता व संजीदगी से प्रयास किया गया है कि यथासंभव उपरोक्त लक्षणों को पलटा जा सके। लिहाज़ा स्थानीय जल भण्डार, नहरों, वॉटरशेड विकास तथा स्थानीय पानी वितरण एवं उपयोग तंत्र के विकास में एक अलग ढंग का टेक्नॉलॉजी चुनाव निहित है।

विकल्प में प्रयुक्त हरेक टेक्नॉलॉजी कई इलाकों में सफलतापूर्वक इस्तेमाल की जा रही है। बांध, जलाशय, खेत-नहरें, पाइप लाइनें, उनका पलस्तर आदि हर मामले में जांची परखी वैकल्पिक टेक्नॉलॉजी उपलब्ध है।

हमारे दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण टेक्नॉलॉजी के तीन प्रमुख लक्षण हैं। पहला लक्षण है बड़े पैमाने पर ऊर्जा की बचत और वह भी पर्याप्त बचत - 1/3 से 1/5 भाग तक।

ऊर्जा की बचत तो हमारे द्वारा प्रयुक्त वैकल्पिक टेक्नॉलॉजी के हर क्षेत्र में है।

दूसरा लक्षण यह है कि कुल लागत में स्थानीय रोज़गार पैदा करने तथा स्थानीय सामग्री पर होने वाले खर्च का हिस्सा कहीं ज़्यादा है। यह महत्वपूर्ण बात है क्योंकि यदि परियोजना के ज़रिये काफी मात्रा में स्थानीय रोज़गार व आमदनी पैदा होती है तो इसे सेवा क्षेत्र में एक विशाल रोज़गार कार्यक्रम के रूप में देखना संभव होगा। इस बात का असर वित्तीय व्यवस्था (फंड) तथा पानी दर के निर्धारण पर भी होगा।

इन वैकल्पिक टेक्नॉलॉजी के अपने अनुभव के आधार पर हमने पाया है कि स्थानीय भण्डार निर्माण में 80% नहरों की लागत का 1/3, वॉटरशेड विकास का 2/3 तथा स्थानीय पानी वितरण तंत्र की लागत का आधा हिस्सा स्थानीय रोज़गार और आमदनी पैदा करने में लगेगा। इसी प्रकार से हमने यह भी माना है कि बुनियादी सेवा पाने वाले हर परिवार पर वितरण लागत 10,000 रुपये आएगी।

विकल्प के तहत् चयनित टेक्नॉलॉजी का तीसरा लक्षण यह होगा कि इसमें हुनर विकास की गुंजाइश होगी। स्थानीय स्तर पर पैदा होने वाला रोज़गार मात्र अकुशल मज़दूरी नहीं होगा। एक सहभागितापूर्ण तरीके में नई टेक्नॉलॉजी लोगों के लिए नए हुनर अर्जित करने का माध्यम बन जाती है। इन टेक्नॉलॉजी के व्यापक इस्तेमाल के फलस्वरूप हुनर में जो सुधार व विकास होगा वह भावी विकास में काम आएगा। यह भी टिकाऊ समृद्धि की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम होगा।

तालिका 2.4
वैकल्पिक योजना की कुल लागत (करोड़ रुपये में)

मद	कुल लागत	स्थानीय रोज़गार व आमदनी का अंश	गैर स्थानीय अंश
सरदार सरोवर बांध	1200	-	1200
बराज	320	-	320
नहर तंत्र के पम्प में निवेश	650	-	650
पनबिजली की मशीनरी	3000	-	3000
स्थानीय भण्डार निर्माण	650	520	130
फीडर नहरें	1800	600	1200
वॉटरशेड विकास	2300	1500	800
समतामूलक पानी वितरण तंत्र	2000	1000	1000
कुल	11,920	3,620	8,300

परियोजना की कुल लागत करीब 12,000 करोड़ रुपए आती है।

यहां हम पुनर्वास सम्बंधी उस वैकल्पिक विचार को जोड़ सकते हैं जो आदिवासी कार्यकर्त्ताओं के साथ बातचीत में उभरा था। यदि अपस्ट्रीम क्षेत्र विकास के उनके नज़रिये को हम परियोजना लागत में जोड़ दें तो लगभग 1000 करोड़ रुपए का अतिरिक्त खर्च होगा। तब परियोजना की लागत 12,920 करोड़ रुपए हो जाएगी जो लगभग मूल स.स.प. के तुल्य है।

ऊर्जा सम्बंधी रवैया

अब हमें इस बात की गणना कर ही लेनी चाहिए कि विकल्प में पम्पिंग की ज़रूरत के लिए सालाना कुल कितनी बिजली या ऊर्जा खर्च होगी। ऐसा नहीं लगना चाहिए कि हम ऊर्जा को पानी की तरह बहा रहे हैं।

सालाना ऊर्जा भार

पानी के समतामूलक वितरण तथा पुनरुत्पादक इस्तेमाल हेतु ज़रूरी पम्पों की लागत तो वितरण तंत्र की लागत में शामिल कर ली गई है। लेकिन इसके लिए ज़रूरी सालाना ऊर्जा की भी गणना करनी होगी।

विकल्प के अन्तर्गत गुजरात का बुनियादी सेवा क्षेत्र 32,33,000 हैक्टर आता है। बांध के अपस्ट्रीम मध्यप्रदेश में बुनियादी सेवा क्षेत्र 70,000 हैक्टर है। यानी कुल बुनियादी सेवा क्षेत्र 33,00,000 हैक्टर (33 लाख हैक्टर) है। आर्थिक सेवा क्षेत्र 8,40,000 हैक्टर है। इस प्रकार से वैकल्पिक परियोजना का कुल सेवा क्षेत्र 41.5 लाख हैक्टर है।

ज़ाहिर है कि विकल्प के अन्तर्गत पूरे सेवा क्षेत्र को पानी गुरुत्व बल से नहीं मिलेगा। इसमें से लगभग आधे क्षेत्र को गैर-गुरुत्व कमान क्षेत्र माना जा सकता है। हमारा अनुमान है कि इस आधे क्षेत्र तक पानी पहुंचाने के लिए औसतन पानी को 40 मीटर लिफ्ट करना होगा (अधिकतम लिफ्ट 70-75 मीटर होगा)। विकल्प के अन्तर्गत व्यवस्था यह है कि मुख्य स्रोत से 73 लाख एकड़ फुट पानी वितरण किया जाएगा। इसमें से आधे (यानी करीब 37 लाख एकड़ फुट) पानी को 40 मीटर औसत लिफ्ट करना होगा। 80 प्रतिशत कार्य क्षमता के आधार पर इस काम को करने में लगभग 16 करोड़ युनिट ऊर्जा लगेगी। यदि हम यह मानें कि यह काम 1000 घंटे में (याने 100 दिन में 10 घंटे प्रतिदिन के हिसाब से) किया जाएगा तो पावर उत्पादन की क्षमता 160 मेगावॉट लगेगी।

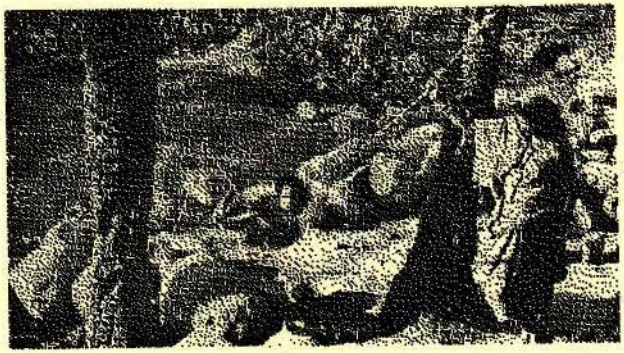

ऊर्जा व पावर (जिसमें वितरण प्रणाली की ज़रूरतें भी शामिल हैं) का अनुमानित आय-व्यय पत्रक निम्नानुसार है :

	मद	ऊर्जा (लाख युनिट)	पॉवर (मेगावॉट)
1.	कच्छ और सौराष्ट्र तक पानी पहुंचाने के लिए	14,440	485
2.	अपस्ट्रीम क्षेत्र में पानी पम्प करने हेतु	420	42
3.	वितरण तंत्र में पम्पिंग	1,600	160
4.	परियोजना का कुल आंतरिक ऊर्जा खर्च (1 + 2 + 3)	16,460	687*
5.	सरदार सरोवर पर बिजली उत्पादन	26,000	-
6.	नेट उपलब्ध ऊर्जा	9,540	–

* तात्पर्य मात्र मौसमी भार से है। इसमें से अधिकांश ऊर्जा का उपयोग गैर-पीक अवधि में किया जाएगा।

इसकी तुलना वर्तमान परियोजना से करके देखना लाज़मी है। वर्तमान परियोजना में शुरुआती चरण में 36,000 लाख युनिट उत्पादन का प्रावधान है। परन्तु इसके रूबरू आन्तरिक खपत भी होगी, जिसका प्रायः ज़िक्र नहीं किया जाता। अनुमान है कि लगभग 7,000 लाख युनिट (संचालन भार 80 मैगावॉट) की खपत तो कच्छ व सौराष्ट्र लिफ्ट के लिए होगी। इसके अलावा पानी के मिले-जुले उपयोग हेतु 3,430 लाख युनिट खर्च होगी (संचालन भार 175 मैगावॉट होगा), तथा 4,380 लाख युनिट (संचालन भार 50 मेगावॉट) की खपत नहर तंत्र के संचालन में होगी। यदि हम मात्र लिफ्ट व नहर तंत्र संचालन की तुलना करें तो इन दो चीज़ों में 11,000 लाख युनिट बिजली खर्च होगी। लिहाज़ा स.स.प. से शुद्ध बिजली उत्पादन 36,000 - 11,000 = 25,000 लाख युनिट माना जा सकता है।

यानी वर्तमान स.स.प. की तुलना में वैकल्पिक योजना में ऊर्जा का घाटा 15,500 लाख युनिट का है। यह मात्र शुरुआती चरण की बात है।

अलबत्ता यदि हम उस परिस्थिति पर विचार करें जब मध्यप्रदेश अपने हिस्से के पानी का उपयोग करने लगेगा, तो पाएंगे कि वर्तमान स.स.प. में ऊर्जा उत्पादन मात्र 4,000 लाख युनिट रह जाएगा। अर्थात् यह परियोजना तब 11,000 – 4,000 = 7,000 लाख युनिट ऊर्जा की खपत करेगी। उक्त परिस्थिति में वैकल्पिक परियोजना में लगभग 10,000 लाख युनिट बिजली पैदा होगी। यानी वैकल्पिक परियोजना 16,460 - 10,000 = 6,460 लाख युनिट बिजली खाएगी। ज़ाहिर है कि दूरगामी रूप में रूढ़िगत ऊर्जा उत्पादन के लिहाज़ से वर्तमान परियोजना और वैकल्पिक परियोजना में कोई खास अन्तर नहीं है। ऊर्जा का जो घाटा नज़र आता है वह तात्कालिक ही है। अभी हमने सेवा क्षेत्र में बायोमास उत्पादन के एकीकृत ऊर्जा नियोजन के ज़रिये जो ऊर्जा उत्पादन क्षमता विकल्प में उपलब्ध होगी, उस पर तो विचार ही नहीं किया है। आगे हम इस बात पर विचार करेंगे कि तात्कालिक ऊर्जा घाटे की वजह क्या है।

अव्वल तो यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि विकल्प की रचना करते हुए हम अपने ही द्वारा आरोपित इस सीमा से बंधे हैं कि जितना पैसा खर्च हो चुका है उसे यथासंभव बेकार न जाने दें। वह भी एक ऐसी परियोजना में जिस का

ढांचा ऊर्जा के नज़रिये से बनाया ही नहीं गया था। हमने स्वयं के ऊपर उक्त सीमा न थोपी होती तो हमारा अनुमान है कि उतने ही या उससे कम खर्च में तथा काफी कम विस्थापन करके ज़्यादा ऊर्जा पैदा की जा सकती है। इसके लिए मझोले बांधों की एक शृंखला का इस्तेमाल करना ज़्यादा उपयुक्त होता।

एक बार जब हम यह स्वीकार कर लें कि पानी को बांध के पीछे भरना ज़रूरी नहीं है और इसे स्थानीय जल भण्डारों में पहुंचाना कहीं बेहतर विकल्प है तो कई संभावनाएं खुलने लगती हैं। इसी प्रकार से यदि ऊर्जा उत्पादन में हम बहते पानी में मौसमी उत्पादन तथा गैर-मानसून अवधि में पम्प जनित जलाशय का इस्तेमाल करने की बात करें, तो कई बदलाव संभव हो जाते हैं। परन्तु ऐसा करने का मतलब होगा कि स.स.प. में अब तक हो चुके निवेश को डूब खाते में डालना।

दूसरी बात यह ध्यान में रखने की है कि पानी का समतामूलक एवं पुनरुत्पादक इस्तेमाल मुफ्त में संभव नहीं है। इसकी एक निश्चित कीमत ऊर्जा के रूप में चुकानी होगी। इस कीमत को चुकाने से इंकार करने का अर्थ यह होगा कि समतामूलक पानी वितरण तथा उस पर आधारित पुनरुत्पादक इस्तेमाल को नकारना।

हमारा दृढ़ मत है कि जिन परियोजनाओं में बिजली उत्पादन होता है उनमें पानी के समतामूलक वितरण तथा पुनरुत्पादक इस्तेमाल के लिए ज़रूरी ऊर्जा को परियोजना का अभिन्न अंग माना जाना चाहिए। वास्तव में हमारा मत है कि ऊर्जा को पूरी तरह अन्य कार्यों के लिए आवंटित किया जाना अपने प्राकृतिक संसाधनों के प्रति बेरुखी का सबसे दुखद उदाहरण है।

तीसरी बात यह है कि परियोजना नियोजन में इस तथ्य का ध्यान रखा जाना चाहिए कि सेवा क्षेत्र में भी ऊर्जा उत्पादन हो रहा है तथा इस ऊर्जा के इस्तेमाल का नियोजन किया जाना चाहिए। बुनियादी सेवा की बदौलत लोगों की ज़रूरतें पूरी होने के बाद प्रति परिवार 3 टन अतिरिक्त बायोमास पैदा होता है। यदि पशुधन में न्यूनतम युक्तिसंगत फेरबदल किया जाए तो इसे बढ़ाकर 5 टन किया जा सकता है। यह बायोमास दरअसल टिकाऊ ढंग से उत्पादित इस्तेमाल योग्य अतिरिक्त ऊर्जा ही है। इस नज़रिये को लागू करना तो दूर, ऐसी कोई बात सरकारी नियोजन में कभी सोची तक नहीं गई। हम आगे देखेंगे कि इस बायोमास के ज़रिये न सिर्फ पम्पिंग हेतु ज़रूरी ऊर्जा की पूर्ति हो जाती है बल्कि यह एक टिकाऊ विकेन्द्रित औद्योगिक समृद्धि का आधार भी बन सकती है।

इस मुद्दे पर हम तीसरे खण्ड में विस्तार से चर्चा करेंगे। यहां हम सिर्फ यह देखने की कोशिश करेंगे कि यह बायोमास तुलनात्मक रूप से ऊर्जा की कितनी मात्रा का द्योतक है।

हर किलोग्राम बायोमास कितनी ऊर्जा का द्योतक है याने यह बायोमास कितनी ऊर्जा का स्थान ले सकता है या इसका ऊर्जा विस्थापन मूल्य कितना है। यह इस बात पर निर्भर है कि हम इस बायोमास को किस काम में उपयोग करते हैं। यह सिद्ध किया जा सकता है कि ईंधन के रूप में इस्तेमाल हो तो एक किलोग्राम बायोमास कम से कम 0.7 किलोवॉट घण्टा (याने युनिट) विद्युत ऊर्जा के तुल्य होता है। यदि इसी बायोमास को ढांचों में प्रयुक्त इस्पात के विकल्प के रूप में उपयोग किया जाए तो यह 2 किलोवॉट घण्टे तथा प्लास्टिक के विकल्प में रेशे के रूप में इस्तेमाल किया जाए तो 4 किलोवॉट घण्टे के तुल्य होता है। ईंधन के रूप में इस्तेमाल करने पर बायोमास न्यूनतम ऊर्जा मूल्य देता है। अतः हम इसी के आधार पर इस्तेमाल योग्य बायोमास का ऊर्जा विस्थापन मूल्य निकालेंगे।

3 से 5 टन का इस्तेमाल योग्य बायोमास 2,100 से 3,500 युनिट तक का द्योतक है। बुनियादी सेवा क्षेत्र में कुल परिवारों की संख्या 21 लाख है। यानी कुल इस्तेमाल योग्य बायोमास 441 करोड़ से 750 करोड़ युनिट का द्योतक है। इसका अर्थ यह हुआ कि विकल्प के तहत् यह परियोजना इतनी ऊर्जा का उत्पादन करेगी जो पम्पिंग ऊर्जा तथा ऊर्जा घाटे की तुलना में 3 से 5 गुना तक होगी। यदि हम कुल उत्पादित बायोमास में से मात्र एक-तिहाई का उपयोग भी कर पाएं, तो यह पम्पिंग ऊर्जा की पूर्ति कर देगा। और मूल स.स.प. के विपरीत यह ऊर्जा का निरन्तर, टिकाऊ स्रोत होगा। इस बायोमास के इस्तेमाल की चर्चा अगले खण्ड में की गई है।

ऊर्जा घाटे की पूर्ति

वास्तव में समस्या तो कुछ और ही है। दरअसल स.स.प. में पनबिजली एक गौण लाभ है मगर उसे अधिकतम करने की कोशिश की जा रही है। वास्तव में इस परियोजना में अधिकतम ऊर्जा उत्पादन एकीकृत ऊर्जा नियोजन के ज़रिये ही प्राप्त किया जा सकता है। स.स.प. की कई समस्याओं, जैसे ऊंचाई बढ़ाते जाने की समस्या की वजह यह है कि इसकी योजना अजीबो-गरीब ढंग से बनाई गई। बॉण्ड बेचे जा रहे हैं, विभिन्न क्षेत्रों को बिजली के वादे कर दिए गए हैं। हम इन बिजली के सौदागरों को भलीभांति पहचानते हैं। उन्हें तो बिजली रूपी ऊर्जा किसी भी कीमत पर चाहिए।

यदि हम वर्तमान 13,000 करोड़ की लागत की सीमा में काम करें और अपस्ट्रीम विकास का न्यूनतावादी नज़रिया अपनाएं तो हमारे पास 1,000 करोड़ रुपए बचेंगे। यह हम बिजली उत्पादन में लगा सकते हैं मगर हमारी एक छोटी सी शर्त होगी। हमारा आग्रह होगा कि बिजली उत्पादन की जो सुविधा खड़ी की जाए वह गैस-सौर सहउत्पादन पर आधारित हो। गैस-सौर प्रणाली सौर सह-उत्पादन की दृष्टि से आदर्श है। गुजरात को निकट भविष्य में जो समुद्री तेल भण्डार मिलने लगेंगे, उनके उपयोग का भी यह श्रेष्ठतम तरीका होगा।

यदि विश्व बैंक के अनुमानों को मान लिया जाए, तो इसकी लागत आम ताप बिजली सुविधा के बराबर यानी करीब 4 करोड़ प्रति मैगावॉट होगी। हमारा अनुमान है कि अनुसंधान व विकास के खर्च को जोड़कर गैस-सौर सहउत्पादन प्रणाली की लागत 5 करोड़ प्रति मेगावॉट से ज़्यादा नहीं होगी। वास्तव में इससे टेक्नॉलॉजी का भी विकास होगा जिससे आगे ऐसी प्रणालियां स्थापित करने की लागत कम हो जाएगी। यानी बचे हुए 1,000 करोड़ रुपये में 200 मेगावॉट फर्म पावर की सुविधा स्थापित की जा सकती है जिससे 175 करोड़ युनिट सालाना उत्पादन होगा। जिससे notional ऊर्जा में हुए घाटे की लगभग पूर्ति हो जाएगी।

परन्तु यदि हम अपस्ट्रीम विकास को लेकर आदिवासी कार्यकर्त्ताओं द्वारा प्रस्तुत नज़रिया अपनाएं तो परियोजना की लागत 1,000 करोड़ बढ़ जाएगी। इसे वहन करने के अलावा कोई चारा नहीं है।

हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि बिजली (ऊर्जा) का उक्त घाटा शुद्धतः notional है तथा तात्कालिक है। बिजली उत्पादन सम्बंधी विस्तृत चर्चा खण्ड 3 में की गई है।

लाभ-लागत अनुपात

हम शुरू में ही स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हमारे लिए उस लाभ-लागत अनुपात का कोई महत्व नहीं है जिसका इस्तेमाल स.स.प. के समर्थक व विरोधी अपनी दलीलों में प्रायः करते हैं। परियोजना के लाभ-लागत अनुपात की गणना में हमारी कोई दिलचस्पी नहीं है। कारण यह है कि इस अनुपात के पीछे कई सारी अघोषित मगर आपत्तिजनक अवधारणाएं जुड़ी होती हैं। जिस ढंग से निर्णय प्रक्रिया में इस अनुपात का इस्तेमाल किया जाता है वह भी आपत्तिजनक है।

पहली आपत्ति तो इस सिद्धांत पर है कि हर तरह के लाभ अथवा लागत को एक आंकड़े में तबदील किया जा सकता है तथा ऐसा करना वांछनीय है।

दूसरा आपत्तिजनक सिद्धांत यह है कि यदि किसी परियोजना का लाभ-लागत अनुपात 1.4 (या ऐसे ही किसी अन्य आंकड़े) से ज़्यादा हो, तो मात्र इसी के बलबूते पर वह परियोजना जायज़ हो जाती है।

लाभ-लागत अनुपात वास्तव में लालफीताशाही का एक औज़ार है। जब किसी मुद्दे का समाधान खुली सार्वजनिक चर्चा के माध्यम से होना चाहिए किन्तु इसे लोगों से छिपाकर सरकारी दफ्तरों में मात्र रिपोर्टों के आधार पर तय करना होता है, तब लाभ-लागत अनुपात एक सुविधाजनक औज़ार बन जाता है। इसका उपयोग करके निर्णयों को एक वैज्ञानिक जामा पहनाया जाता है।

जब कई विकल्पों के बीच से चयन हो, तो सबसे पहले हर विकल्प के उद्देश्य स्पष्ट रूप से व्यक्त करने होंगे। यदि विभिन्न विकल्पों के उद्देश्य ही अलग-अलग हों, तो लाभ-लागत अनुपात से तुलना में कोई खास मदद नहीं मिलने वाली।

यदि कई अलग-अलग विकल्प एक ही उद्देश्य की पूर्ति करते हों तब शायद आंकड़ों से कुछ मदद मिल सके। किन्तु अधिकांश परियोजनाएं, जो सामाजिक आकर्षण का केन्द्र बनती हैं, वे इस तरह की नहीं होती। इसलिए हमने लाभ-लागत अनुपात के नाम पर कोई आंकड़ा नहीं निकाला है, न तो सरदार सरोवर की मूल योजना के लिए और न विकल्प के लिए।

हम तालिका 2.5 में मात्र वर्तमान और वैकल्पिक योजनाओं की तुलना प्रस्तुत कर रहे हैं।

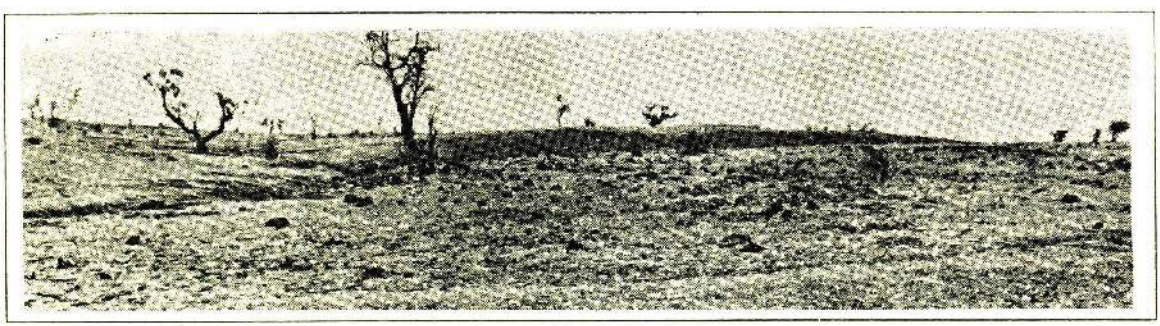

तालिका 2.5
वर्तमान योजना और विकल्प की तुलना

क्र.	मद	वैकल्पिक योजना	वर्तमान योजना
1.	स.स.बांध में भण्डारण स्तर	107 मीटर (90 मीटर बेस लाइन स्तर)	140 मीटर
2.	स्थायी डूब	10,800 हैक्टर	36,000 हैक्टर
3.	विस्थापन	विस्थापन में भारी कमी	1.5 लाख लोग विस्थापित
4.	पुनर्वास	उसी क्षेत्र में, नर्मदा से पानी के आश्वासन के साथ	उजाड़े जाकर नए क्षेत्र में पुनर्वास
5.	अपस्ट्रीम सेवा क्षेत्र	1 लाख हैक्टर से ज़्यादा	शून्य
6.	गुजरात सेवा क्षेत्र	41 लाख हैक्टर	18 लाख हैक्टर
	इसमें से सौराष्ट्र	13.1 लाख हैक्टर (32%)	3.9 लाख हैक्टर (22%)
	कच्छ	4.0 लाख हैक्टर (10%)	0.4 लाख हैक्टर (2%)
	उत्तर गुजरात	14.7 लाख हैक्टर (36%)	3.1 लाख हैक्टर (17%)
	शेष गुजरात	8.9 लाख हैक्टर (22%)	10.6 लाख हैक्टर (59%)
7.	स.स.प. पर ताज़ा बिजली का उत्पादन	850 मेगावॉट (260 करोड़ युनिट)	1400 मेगावॉट (360 करोड़ युनिट)
	परियोजना में बिजली का खर्च	164.6 करोड़ युनिट	113.8 करोड़ युनिट
	पीक लोड (शीर्ष उत्पादन) सुविधा	1200 मेगावॉट	1400 मेगावॉट
	गैस-सौर सहउत्पादन	200 मेगावॉट	शून्य
8.	बायोमास के रूप में अतिरिक्त ऊर्जा का उत्पादन	न्यूनतम 441 करोड़ युनिट के तुल्य (263 लाख टन)	कोई योजना नहीं
9.	समतामूलक पानी वितरण तथा टिकाऊ विकास	बुनियादी मुद्दा है	कोई योजना नहीं
10.	कुल लागत	12,920 करोड़ रु.	13,000 करोड़ रु.
	इसमें स्थानीय रोज़गार व सेवाओं पर खर्च	3,620 करोड़ रु.	नगण्य
11.	लागत वसूली	बुनियादी व आर्थिक सेवा में अन्तर के आधार पर वसूली	ऐसी कोई योजना नहीं
12.	गुजरात का पानी का हिस्सा	90 लाख एकड़ फुट	90 लाख एकड़ फुट
13.	जंगलों का नुकसान	डूब में 3000 हैक्टर + पुनर्वास हेतु 10,000 हैक्टर (कम गुणवत्ता का जंगल)	13,700 हैक्टर (अधिकतर अच्छी गुणवत्ता का जंगल)
14.	सेवा क्षेत्र में स्थाई वनस्पति आच्छादन	11 लाख हैक्टर (अपस्ट्रीम जलाशय के नज़दीक के वन क्षेत्र का 23,000 हैक्टर)	कोई प्रावधान नहीं

पानी की कीमत का निर्धारण

सिंचाई पानी के बाज़ार की हालत काफी अजीब है। बड़ी परियोजनाओं के कमान क्षेत्रों में सिंचाई की दरें इतनी कम हैं कि लागत वसूली लगभग शून्य होती है। दूसरी तरफ इन कमान क्षेत्रों के बाहर के किसान पानी की व्यवस्था करने में भारी लागत वहन करते हैं। यहां की पानी की कीमत कमान क्षेत्र के मुकाबले कई गुना होती है। इस अजीब परिस्थिति का सामना करने के लिए बुनियादी सेवा और आर्थिक सेवा में भेद करना ज़रूरी है।

आज हालत यह है कि बड़ी परियोजनाओं के कमान क्षेत्र में आर्थिक सुविधा हेतु पानी अत्यधिक सस्ती दरों पर दिया जा रहा है। इन कमान क्षेत्रों के बाहर बुनियादी सुविधा के लिए भी पानी की भारी कीमत चुकानी होती है। इसकी वजह से तथा कमान क्षेत्र के केन्द्रीकृत प्रबन्धन की वजह से कमान क्षेत्रों में पानी का बहुत ज़्यादा तथा बहुत अकार्यक्षम उपयोग हो रहा है। कमान क्षेत्रों के बाहर हालत यह है कि पानी की ऊंची कीमतों के चलते किसान मजबूर होकर इसका उपयोग नगदी फसलों के लिए करते हैं।

इस अजीब स्थिति की मुख्य वजह यह है कि बुनियादी सुविधा और आर्थिक सुविधा के बीच भेद नहीं किया जाता है। कमान क्षेत्रों में तथा कमान क्षेत्रों से बाहर भी बुनियादी सुविधा अपेक्षाकृत कम व उचित दाम पर उपलब्ध होनी चाहिए। यह भी ज़रूरी है कि आर्थिक सुविधा की कीमत का निर्धारण लागत वसूली के आर्थिक मापदण्डों के आधार पर किया जाए।

दरअसल बुनियादी सुविधा व आर्थिक सुविधा के बीच विभेद करने का यह सिद्धांत अन्य क्षेत्रों में भी उपयोगी है। आज सरकार निजीकरण की दिशा में बढ़ रही है। कई सेवा-सुविधाएं मुनाफाखोरों के हाथों में सौंपी जा रही हैं। बहाना कार्यक्षमता का बनाया जा रहा है। आर्थिक व बुनियादी सुविधाओं में भेद किए बगैर सार्वजनिक सुविधाओं का अंधाधुंध निजीकरण खतरनाक हो सकता है। इसका असर मात्र यह होगा कि सारी सुविधाएं आर्थिक रूप में उपलब्ध होंगी तथा संसाधन-निर्धन लोगों को मिलने वाला बुनियादी सुविधा का सहारा समाप्त हो जाएगा। ज़रूरत इस बात की है कि सबसिडी की बनावट में इस तरह परिवर्तन किए जाएं कि इसका उपयोग मात्र बुनियादी सुविधा हेतु किया जा सके। निवेश पर पूंजीगत सबसिडी दी जानी चाहिए न कि सालाना आवर्ती सबसिडी। हमने पानी की दरों की गणना करते हुए इसी बात का पालन किया है।

सबसे पहला कदम तो यह होगा कि लागत का विभाजन शहरी पानी व ग्रामीण पानी के बीच किया जाए। शहरी पानी का एक बड़ा हिस्सा औद्योगिक कार्यों में खर्च होगा। उद्योग इस पानी की कीमत आसानी से चुका सकते हैं। वैसे भी शहर आम तौर पर ज़्यादा कीमत चुका सकते हैं। इसलिए शहरी पानी पर लागत का भार अनुपात से ज़्यादा डाला गया है।

यहां हम जिस लागत की बात कर रहे हैं वह स्रोत पर लागत है। शहर इस लागत को औद्योगिक व घरेलू क्षेत्र में किस तरह बांटेंगे यह उनका अपना आन्तरिक मामला है। बेशक यह आन्तरिक बंटवारा इस तरह करना होगा कि घरेलू उपयोग पर कम भार आए।

शहरों के लिए पानी का आवंटन 18 लाख एकड़ फुट है जो गुजरात के हिस्से (90 लाख एकड़ फुट) का 20% है। हम इस उपयोग पर केन्द्रीय पानी परिवहन तंत्र की लागत का 40% डाल रहे हैं। (इसमें स्थानीय भण्डार विकास, वाटरशेड विकास, वितरण तंत्र आदि की लागत शामिल नहीं की गई है।) हम इस लागत पर 14% वार्षिक लाभ की दर से पानी की कीमत निकालेंगे।

शेष बची लागत ग्रामीण सप्लाई से वसूल की जाएगी। हम यह मानकर चल रहे हैं कि पानी शुल्क के रूप में सरकार जो भी पैसा वसूल करेगी उसमें से स्थानीय रोज़गार व आमदनी पैदा करने वाले निवेश की आनुपातिक राशि स्थानीय पाउस को लौटा दी जाएगी। इसका उपयोग स्थानीय पानी तंत्र के विकास व प्रबन्ध में किया जाएगा। इस व्यवस्था से यह सुनिश्चित होगा कि स्थानीय पानी संसाधनों हेतु किया गया निवेश पानी संसाधनों के पुनरुत्पादन, सुधार व विकास हेतु एक स्थायी विकास कोष बन जाएगा।

बुनियादी सेवा की कीमत निर्धारण के लिए हमने परिवार को एक इकाई माना है, पानी की मात्रा को नहीं।

क्या 70% कार्यक्षमता हासिल हो सकती है?

जो सारा पानी स्रोत से छोड़ा जाता है वह खेतों तक नहीं पहुंचता। आज बेहतर प्रबन्धित कमान क्षेत्रों में स्रोत और खेत के बीच 40% कार्यक्षमता नज़र आती है। फिर भी हमने विकल्प में कार्यक्षमता 70% मानी है। क्या इतनी नाटकीय वृद्धि मानना उचित है?

उत्तर है कि यह संभव है। इसके दो कारण हैं। पहली बात तो यह है कि हमने सारे मुख्य चैनलों में पलस्तर का प्रावधान रखा है। इसी प्रकार से हमारी पूरी डिलीवरी प्रणाली कम लागत के पाइपों पर आधारित है। यदि कांक्रीट पलस्तर और पी.वी.सी. या सीमेंट पाइपों की बात की जाए तो ऐसी प्रणाली बहुत महंगी होगी। ऊर्जा खपत के लिहाज़ से भी यह प्रणाली बहुत खर्चीली साबित होगी।

दूसरा कारण यह है कि हम इस पूरी प्रणाली को पानी उपयोगकर्ता समूहों पर आधारित मानते हैं। ये समूह अपने-अपने इलाकों में सतही व भूमिगत पानी का एकीकृत उपयोग करेंगे। जिन प्रणालियों में भूजल और सतही जल को एकीकृत रूप में नहीं देखा जाता, उनमें रिसाव (सीपेज) एक तरह से पानी की बरबादी ही मानी जाती है। इसके विपरीत एकीकृत प्रणाली में रिसाव का अर्थ मात्र यह होता है कि इस (रिसे हुए पानी) का दोहन सतही पानी के रूप में न करके भूजल के रूप में करना होगा। टेक्नॉलॉजी पर इसका महत्वपूर्ण असर देखा जा सकता है। गैर-एकीकृत प्रणाली में रिसाव को रोकने हेतु सीमेंट पलस्तर तथा अन्य महंगे उपाय किए जाते हैं। परन्तु किसी एकीकृत प्रणाली में रिसाव को बस एक सीमा में रखने की ज़रूरत होती है ताकि इसका उपयोग बतौर भूजल किया जा सके। इस तरह की एकीकृत प्रणाली में रिसन की वजह से हुई 'बरबादी' को काफी हद तक सहन किया जा सकता है।

इसलिए हमने ध्यान रखा है कि सभी इलाकों में प्रति परिवार कीमत समान रहे। ऐसा करने से संसाधन की दृष्टि से निर्धन इलाके के लोगों को उनके कृषि-जलवायु क्षेत्र की अपर्याप्त पानी उपलब्धता का खामियाजा नहीं भुगतना होगा। आर्थिक सेवा की गणना प्रति घन मीटर पानी के आधार पर करके इसे प्रति हैक्टर लागत में परिवर्तित किया गया है। वसूली निवेश का चित्र तालिका 2.6 में दिया गया है। इसमें 1500 करोड़ रुपए शहरी व औद्योगिक उपयोग के मद में तथा 7500 करोड़ रुपए ग्रामीण उपयोग के मद में हैं। इसमें 3750 करोड़ रुपए स्थानीय आमदनीजनक निवेश है।

तालिका 2.6

पानी के उपयोग के अनुसार निवेश का वर्गीकरण (सारे आंकड़े करोड़ रुपए में)

निवेश का मद	कुल निवेश	शहरी व औद्योगिक	ग्रामीण उपयोग		
			कुल ग्रामीण	स्थानीय लागत	अन्य
सरदार सरोवर बांध	1200	480	720	-	720
बराज	320	128	192	-	192
पम्प का निवेश	650	260	390	-	390
स्थानीय भण्डार विकास	650	-	650	520	130
नहरें	1800	720	1080	600	480
वॉटरशेड विकास	2300	-	2300	1500	800
समतामूलक पानी वितरण	2000	-	2000	1000	1000
कुल	8,920	1,588	7,332	3,620	3,712
कुल (लगभग)	8, 920	1, 500	7, 500	3, 750	3, 750

शहरी व औद्योगिक पानी की दरें

शहरी व औद्योगिक उपयोग के लिए 18 लाख एकड़ फुट पानी रखा गया है। यदि पानी 70% कार्यक्षमता पर उपलब्ध हो तो स्रोत पर इसकी मात्रा 150 करोड़ घन मीटर होती है।

इस पानी के लिए सरदार सरोवर परियोजना निवेश में से 1500 करोड़ वसूली योग्य माना गया है। यानी प्रति घन मीटर वसूली योग्य निवेश 10 रुपए आता है। 14% की दर से पानी की कीमत 1 रुपए 40 पैसे प्रति घन मीटर या रु. 1.40 प्रति 1000 लीटर आती है।

ग्रामीण क्षेत्रों के लिए निवेश की दर

खेतों पर बुनियादी सेवा के लिए उपलब्ध पानी की मात्रा 700 करोड़ घन मीटर है तथा आर्थिक सेवा के लिए 500 करोड़ घन मीटर पानी की ज़रूरत है। याने बुनियादी व आर्थिक दोनों सेवाओं को मिलाकर खेतों पर 1200 करोड़ घन मीटर पानी उपलब्ध होगा। खेतों पर बुनियादी सेवा के लिए, जैसी कि ऊपर गणना की गई, इस पानी के लिए सरदार सरोवर परियोजना निवेश का 7500 करोड़ रुपया लगा है। लिहाज़ा प्रति घन मीटर वसूली योग्य निवेश रु. 6.25 आता है। हम इसी आंकड़े के आधार पर दोनों तरह की सेवाओं की दर की अलग-अलग गणना करेंगे।

बुनियादी सेवा दर

इसके लिए हम (2% संचालन व रखरखाव खर्च तथा 4% घिसारे की दर से) 6% वसूली का लक्ष्य लेकर चलते हैं। इस दर से 700 करोड़ घन मीटर पानी पर कुल वसूली 262.5 करोड़ रुपए करनी होगी (700 x 6.25 x

6% = 262.5 करोड़ रुपए) कुल लाभांवित परिवारों की संख्या 21 लाख है। लिहाज़ा प्रति परिवार बुनियादी सेवा की कीमत 1250 रुपए होगी। इसमें से 625 रुपए स्थानीय विकास कोष के रूप में पाउस को जाएंगे। यह राशि करीब 131 करोड़ रुपए होगी।

आर्थिक सेवा की कीमत

वसूली योग्य निवेश पर 10% की दर से आर्थिक सेवा की कीमत तय की गई है। आर्थिक सेवा के लिए उपलब्ध पानी 500 करोड़ घन मीटर है तथा निवेश में इसका हिस्सा 31.25 करोड़ रुपए है। इसका 10% याने 31.25 करोड़ रुपए 8,40,000 हैक्टर आर्थिक सेवा क्षेत्र से वसूल होना है। यानी प्रति हैक्टर कीमत 3900 रुपए या प्रति एकड़ कीमत 1560 रुपए आएगी। इसमें से आधी राशि पाउस को मिलेगी जो कुल 156.25 करोड़ सालाना हो जाएगी।

अर्थात् इस ढांचे के तहत् सालाना स्थानीय विकास बजट में (131 + 156) = 287 करोड़ रुपए जमा होंगे।

यह विश्लेषण कितना संवेदनशील है?

इस पूरे विश्लेषण के सिलसिले में हम कई मान्यताएं लेकर चले हैं। सवाल यह उठता है कि ये मान्यताएं बदलने का लागत आदि पर क्या असर होगा। क्या विकल्प तब भी इतना ही पुख्ता नज़र आएगा?

हमने कोशिश की है कि मौजूदा सीमाओं, जिसमें कुल लागत की अधिकतम सीमा 13,000 करोड़ रुपए का बन्धन भी शामिल है, के अन्दर रहते हुए बुनियादी सेवा क्षेत्र को अधिकतम विस्तार दें। इसके लिए हमने बुनियादी सेवा

और आर्थिक सेवा का एक अनुपात तय किया है। यह अनुपात मूलतः 80% विश्वसनीयता पर सुनिश्चित पानी और परिवर्तनशील पानी की मात्रा का अनुपात है। इसी की वजह से हमारे विकल्प का सेवा क्षेत्र 41.5 लाख हैक्टर है जबकि मौजूदा स.स.प. का सेवा क्षेत्र मात्र 18 लाख हैक्टर था। यानी विकल्प का सेवा क्षेत्र मौजूदा स.स.प. सेवा क्षेत्र की तुलना में दुगने से भी ज़्यादा है!

मूलतः विकल्प का दावा है कि स.स.प. के प्रस्तावित सेवा क्षेत्र के मुकाबले कहीं ज़्यादा विस्तृत क्षेत्र को सेवा देना संभव है। यदि अनुमानित लागत में वृद्धि होती है तो हम दो तरह के संशोधन कर सकते हैं:

1. बुनियादी सेवा के लिए ज़्यादा पानी का आवंटन, यदि यह मान्यता भी अनुमानित लागत को प्रभावित करती हो।
2. बुनियादी व आर्थिक सेवा के अनुपात में परिवर्तन।

इन दोनों की वजह से सेवा क्षेत्र में कमी आएगी किन्तु हमारा सेवा क्षेत्र वैसे भी मौजूदा स.स.प. सेवा क्षेत्र से कहीं बड़ा है।

दरअसल बुनियादी सेवा क्षेत्र में एक लाख हैक्टर की कटौती करने से लागत में 130 करोड़ रुपए की कमी आती है।

यदि हम अपना लक्ष्य यह रखें कि विकल्प का बुनियादी सेवा क्षेत्र मौजूदा स.स.प. के प्रस्तावित सेवा क्षेत्र का डेढ़ गुना हो, तो हमारा बुनियादी सेवा क्षेत्र 33 लाख हैक्टर के बजाय 24 लाख हैक्टर रह जाएगा। इसकी बदौलत लागत में 9x130=1170 करोड़ रुपए की कमी आएगी। इसके अलावा हमने अतिरिक्त बिजली उत्पादन करने के लिए 1000 करोड़ रुपए रख छोड़े हैं। परन्तु, जैसा कि हम तीसरे खण्ड में स्पष्ट करेंगे, यह कतई ज़रूरी नहीं है। यदि इसको हटा दें तो लागत में कुल 2200 करोड़ की कमी आने की गुंजाइश मौजूद है। यानी मान्यताओं में किसी भी बदलाव को झेलने की गुंजाइश विकल्प में है।

यह ज़रूर है कि इसका असर पानी की कीमतों पर पड़ेगा। परन्तु यहां भी कीमत के ढांचे में कुछ गुंजाइश छोड़ी गई है। मसलन यदि बुनियादी सेवा क्षेत्र में कटौती होती है, तो केन्द्रीय तंत्र की प्रति हैक्टर लागत बढ़ जाएगी। किन्तु इसके साथ ही स्थानीय तंत्र की लागत भी उसी अनुपात में कम हो जाएगी तथा यह काफी हद तक वृद्धि को निष्प्रभावी कर देगी।

बहरहाल यदि बुनियादी सेवा क्षेत्र में कमी आती है तो इसकी एक कीमत तो हमें चुकानी ही होगी। लागत में यह बचत मूलतः स्थानीय तंत्र की लागत में कमी से होगी। याने बुनियादी सेवा क्षेत्र में हर कमी के साथ स्थानीय रोज़गार व आमदनी का अंश कम होता जाएगा। इसके अलावा परियोजना में जो पुनरुत्पादन का पक्ष है वह भी दुर्बल पड़ता जाएगा। इसलिए कोशिश यह होनी चाहिए कि लागत को इस ढंग से समायोजित किया जाए कि बुनियादी सेवा का क्षेत्र यथासंभव अधिक से अधिक रहे।

आगे के कदम : टिकाऊ समृद्धि की ओर

इस खण्ड का अन्त आने तक विकल्प लगभग संपूर्ण लगने लगा होगा। एक अर्थ में यह सम्पूर्ण हो भी चुका है। अधिकतर विकल्प यहीं रुक जाते हैं। जैसा कि तुलनात्मक तालिका से स्पष्ट है काफी कुछ हासिल हो चुका है तथा हमारी राय में विकल्प की स्वीकार्यता निर्णायक तौर पर स्थापित हो गई है। तब और आगे जाने की क्या ज़रूरत है?

यहां यह गौर करना ज़रूरी है कि विकल्प के ज़रिये हमने यह हासिल किया है कि सेवा क्षेत्र में पुनरुत्पादक व समतामूलक ढंग से मूलभूत जीविका को स्थिरता प्रदान की है। और कुछ नहीं। फिलहाल यह पर्याप्त लग सकता है। मगर मसले इतने सरल सहज नहीं होते। बुनियादी जीविका के सुनिश्चित हो जाने से एक ऐसी स्थिति बनेगी जिसमें लोग समृद्धि की ओर बढ़ना चाहेंगे।

फिर हम कई बार यह भी भूल जाते हैं कि हम एक कमसिन राष्ट्र हैं। कमसिन सिर्फ इसलिए नहीं कि हमें आज़ादी मिले मात्र 50 साल हुए हैं, बल्कि इसलिए भी कि हमारी आबादी का अधिकतर हिस्सा कमसिन है। परियोजना पूरी होने तक ये वयस्क हो चुके होंगे। जिसे हमने एक परिवार माना है वह दो या तीन परिवार हो जाएंगे।

विकल्प ने मात्र यही तो किया है कि लोगों की एक निश्चित संख्या के लिए, निश्चित परिवारों के रूप में जीविका का बंदोबस्त किया है। क्या यह विकल्प परिवारों की बढ़ती संख्या के दबाव को झेल पाएगा या क्या इससे उलट प्रक्रिया शुरू हो जाएगी। लोगों द्वारा स्वतंत्र जीविका व रोज़गार की तलाश के दबाव के चलते क्या टिकाऊपन का ह्रास हो जाएगा, जैसा कि आज तक होता आया है? और तब क्या हम भी अपने परिप्रेक्ष्य व सूझबूझ की खामियों को स्वीकार करने की बजाय जनसंख्या वृद्धि का रोना शुरू कर देंगे?

इस बाबत दलील दी जा सकती है कि, यह बात महत्वपूर्ण होते हुए भी, स.स.प. जैसी परियोजना के दायरे में नहीं आती। यह सच है मगर पूरी सच नहीं है। बहरहाल जिस भी हद तक यह मुद्दा परियोजना के दायरे में आता हो, क्या स.स.प. जैसी परियोजना के लिए यह ज़रूरी नहीं कि उनमें इस मुद्दे पर गौर फरमाया जाए? क्या इतनी तहकीकात भी करना ज़रूरी नहीं है कि किस हद तक यह मुद्दा परियोजना के दायरे में आता है?

हमारी राय में यह मुद्दा परियोजना के दायरे में आता है और ऐसी परियोजनाएं वास्तव में ऊर्जा की आत्मनिर्भरता पर आधारित टिकाऊ समृद्धि का मार्ग प्रशस्त कर सकती हैं। और जब तक इन परियोजनाओं के इस पहलू पर गौर नहीं किया जाता तब तक कोई भी विकल्प धराशायी होने से बच नहीं सकेगा। तीसरे खण्ड में हम इसी मुद्दे की चर्चा विस्तार से करेंगे।

चूंकि बुनियादी सेवा अनिवार्य चीज़ है इसलिए इसकी विश्वसनीयता ज़्यादा होनी चाहिए। आमतौर पर इसकी गणना 80 प्रतिशत विश्वसनीयता के आधार पर की जाती है। इसका मतलब यह होता है कि यदि औसत बारिश 600 मि.मी. है और 80 प्रतिशत विश्वसनीयता 400 मि.मी. बारिश की है तो बुनियादी सेवा का नियोजन इस तरह होना चाहिए कि यह 400 मि.मी. बारिश से पूरी हो सके।

कई लोग अक्सर मात्र औसत वर्षा के आंकड़े देखकर कह देते हैं कि सूखाग्रस्त इलाकों में भी वहां के अन्दरूनी पानी से, वॉटरशेड विकास के ज़रिये बुनियादी सेवा दी जा सकती है। परन्तु औसत वर्षों की विश्वसनीयता मात्र 50 प्रतिशत होती है। हमारा आकलन है कि सूखाग्रस्त क्षेत्रों के बड़े हिस्से को उस इलाके की 80 प्रतिशत विश्वसनीय वर्षा के आधार पर बुनियादी सेवा दे पाना संभव नहीं होगा। इसलिए इन इलाकों में वॉटरशेड विकास के साथ-साथ बाहरी पानी का सहारा भी देना होगा। पानी के इस बाहरी सहारे की विश्वसनीयता भी 80 प्रतिशत होना चाहिए।

यदि किसी परियोजना में बुनियादी सेवा तथा बाहरी पानी का सहारा, दोनों की योजना 80 प्रतिशत विश्वसनीयता के आधार पर बनाई गई है तो अधिकांश वर्षों में आर्थिक सेवा के लिए काफी पानी उपलब्ध रहेगा। सिर्फ बहुत बुरे वर्षों में आर्थिक सेवा के लिए पानी नहीं मिलेगा। उन वर्षों में बुनियादी सेवा सबको उपलब्ध रहेगी। निम्न व मध्यम वर्षा के इलाकों के बारे में हमारा अवलोकन है कि औसत वर्षा के आधार पर जो पानी की उपलब्धता आंकी जाती है उसका 30 से 40 प्रतिशत पानी आर्थिक सेवा के लिए उपलब्ध हो जाता है।

खण्ड 3

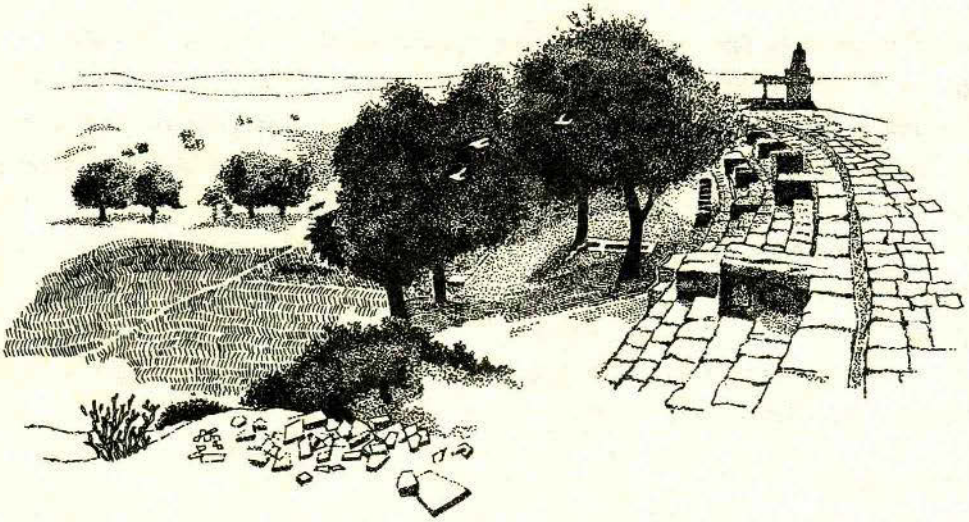

ऊर्जा में आत्मनिर्भरता और टिकाऊ समृद्धि

खण्ड 2 में मूलतः जीवन निर्वाह ही सुनिश्चित किया गया है। इस तीसरे खण्ड में हम मात्र जीवन निर्वाह की स्थिति से आगे जाकर टिकाऊ समृद्धि की बात करेंगे। इसके लिए ज़रूरी यह है कि गैर-कृषि क्षेत्र में जीविका के कई अवसर उपलब्ध हों ताकि गैर-कृषि व्यवसाय व आमदनी में इज़ाफा हो। आमतौर पर इस समस्या को यों देखा जाता है कि औद्योगीकरण की ज़रूरत प्रतिपादित होती है। बहरहाल औद्योगीकरण के मौजूदा स्थापित रुझान को तथा इससे सम्बद्ध टेक्नॉलॉजी को देखें तो एक बात तो यह साफ सामने आती है कि ये शहरों में केन्द्रित है। इसका मतलब है कि इसमें गांव से शहर की ओर पलायन निहित है। दूसरी बात यह भी साफ नज़र आती है कि आज जब शहरों में ही बेरोज़गारी व औद्योगिक ठहराव के अशुभ संकेत दिख रहे हैं, तो इन पिछड़े इलाकों में तो पूंजी निर्माण व संसाधन उपलब्ध हो पाना मुश्किल ही है। लिहाज़ा इस मामले में भी गैर-कृषि व्यवसाय तथा औद्योगिक संगठन के बारे में सर्वथा नए ढंग से सोचने की ज़रूरत है।

यहां जो विकल्प प्रस्तुत किया जा रहा है वह एक विकेन्द्रित तंत्र का है। यह वहाँ के इकोसिस्टम से प्राप्त संसाधनों पर तथा इन संसाधनों को समृद्ध बनाते जाने पर निर्भर है। इसके लिए ऊर्जा व संसाधनों के बारे में तथा इनका उपयोग करने के लिए विकसित की जाने वाली टेक्नॉलॉजी के बारे में नया सोच विकसित करना होगा। यह तंत्र पूर्व में वर्णित भूमि व पानी उपयोग प्रणाली के संसाधनों पर निर्मित होगा ताकि यह प्रक्रिया शुरू होकर स्थिरता प्राप्त कर ले तथा एक विकेन्द्रित औद्योगिक तंत्र का आधार बन सके। इस प्रक्रिया में ऊर्जा व सामग्री के बाहरी इनपुट का उपयोग इस ढंग से किया जाएगा कि पूरा तंत्र लगातार ज़्यादा टिकाऊ बनता चले। इसमें प्रमुख संसाधन वह 3 से 5 टन का अतिरिक्त बायोमास है जो इस प्रणाली में प्रति परिवार उत्पादित होगा। नए परिप्रेक्ष्य में यह बायोमास, ऊर्जा और पूंजीगत माल दोनों तरह से प्रयुक्त किया जा सकता है। यदि इसका सही ढंग से इस्तेमाल किया जाए तो यह एक विकेन्द्रित व आत्मनिर्भर औद्योगिक विकास का दरवाज़ा खोल सकता है। परन्तु इसके लिए हमें ऊर्जा में आत्मनिर्भरता सम्बंधी अपने विचारों को सर्वथा नया रुख देना होगा।

ऊर्जा ही मुख्य मुद्दा है

यहां प्रस्तुत विकल्प में ऊर्जा निरंतरता के एक सूत्र की तरह है। पहले और दूसरे खण्ड में हालांकि हम ज़मीन, पानी और बायोमास की बात करते रहे किन्तु कोशिश लगातार यह रही थी कि बायोमास का उत्पादन अधिकतम हो। अर्थात कोशिश यह थी कि पानी तथा अन्य बाहरी इनपुट के ज़रिये बायोमास के रूप में बारम्बार बहाली योग्य ऊर्जा का उत्पादन बढ़े। यही कारण है कि हमने पूरी प्रणाली के भौतिक इन्फ्रास्ट्रक्चर (ढांचे) जैसे नहरें, वितरण प्रणाली, भण्डारण आदि के लिए एक खास ढंग की टेक्नॉलॉजी का चुनाव किया है। उस हिस्से में हमारा प्रमुख सरोकार ऊर्जा की बचत से था। वहां हमने कम से कम प्रत्यक्ष रूप से ऊर्जा उत्पादन की बात नहीं की थी। बहरहाल वहां हमारा ज़ोर इस बात पर था कि बायोमास उत्पादन की गुंजाइश बढ़े क्योंकि बायोमास ही ऊर्जा है। यानी बायोमास उत्पादन के ज़रिये हमारा लक्ष्य ऊर्जा उत्पादन की गुंजाइश पैदा करना था। दरअसल जब हमने प्रति परिवार 18 टन बायोमास उत्पादन का प्रावधान रखा था तो मंशा यही थी कि परिवार की बुनियादी ज़रूरतें पूरी करने के बाद इस 18 टन में से 3 से 5 टन तक बिक्री योग्य अतिरिक्त बायोमास उपलब्ध हो जाएगा। यह अतिरिक्त बायोमास परिवार की नगदी ज़रूरतों की पूर्ति में काम आ सकता है। इस लिहाज़ से यह अतिरिक्त बायोमास उत्पादों व वस्तुओं के रूप में देखा जा सकता है। परन्तु,

जैसा कि हमने वहां भी स्पष्ट किया था, यह दरअसल अतिरिक्त ऊर्जा ही है। इस अतिरिक्त बायोमास का पूरा महत्व तभी उजागर होगा जब हम इसे बतौर ऊर्जा समझें।

कृषि उत्पादन समेत हर तरह के उत्पादन में ऊर्जा निहायत महत्वपूर्ण है। किन्तु गैर-कृषि, औद्योगिक उत्पादन में तो ऊर्जा अत्यन्त महत्व की चीज़ है। दरअसल इन्सान वस्तुओं व अपने श्रम के साथ ऊर्जा का उपयोग करके ही नई-नई चीज़ों का निर्माण व उत्पादन करते हैं। इस अर्थ में, वस्तुएं भी ऊर्जा का ही रूप हैं क्योंकि इन्हें बनाने के लिए प्रकृति में पहले से मौजूद सामग्रियों व वस्तुओं को मानव श्रम के द्वारा ऊर्जा की मदद से परिवर्तित किया जाता है। यदि हम चाहते हैं कि उत्पादन की आत्मनिर्भर, विकेन्द्रित प्रणाली हो जिस पर लोगों का नियंत्रण हो, तो हमें एक ऐसी प्रणाली की खोज करनी होगी जो उन्हें ज़रूरी ऊर्जा विकेन्द्रित व आत्मनिर्भर ढंग से उपलब्ध करा दे। अतः यहां हम स्थानीय सामग्रियों, श्रम व ऊर्जा के स्थानीय स्रोतों पर आधारित एक ऐसी प्रणाली की रूपरेखा प्रस्तुत कर रहे हैं जिसमें अतिरिक्त बायोमास की भूमिका निर्णायक है।

हमारे पास सबसे पहली चीज़ है स्थानीय सामग्रियां : मिट्टी-पत्थर, रेत, जिन्हें हम आमतौर पर देखते तक नहीं। और है अतिरिक्त बायोमास जिसका उत्पादन किया गया है और जिसका स्वरूप हमारे ऊपर निर्भर है - यह बायोमास लकड़ी के रूप में हो सकता है, छोटे आकार की इमारती लकड़ी के रूप में हो सकता है, रेशों के रूप में, विभिन्न किस्म के मांड (स्टार्च) के रूप में, अखाद्य तेलों के रूप में, रेज़िन के रूप में, कीटनाशक के रूप में हो सकता है। इनमें से कुछ पदार्थ रासायनिक उत्पादन प्रक्रिया में काम आ सकते हैं तथा इस तरह पेट्रोलियम उत्पादों की जगह ले सकते हैं। यह भी हो सकता है कि यह बायोमास फलों, सब्ज़ियों या अन्य खाद्य पदार्थों के रूप में या मांस, मुर्गे आदि के रूप में भी हों। वैसे आमतौर पर बायोमास को खाद्यान्न के स्रोत के रूप में ही देखा जाता है। यह सही है कि ऐसे खाद्यान्न उत्पादन की गुंजाइश काफी है किन्तु रणनीतिक रूप से सिर्फ खाने योग्य, विघटनशील (perishable) वस्तुओं के उत्पादन तक सीमित रहना ठीक नहीं है। इसका एक कारण तो यह है कि हम एक उपभोक्ता समाज में रहते हैं जहां बाज़ार बहुत जल्दी ही सम्पृक्त हो जाता है। इस बाज़ार में बहुत ज़्यादा उतार-चढ़ाव होते हैं तथा इन उतार चढ़ावों पर नियंत्रण तभी रखा जा सकता है जब सप्लाई मांग की तुलना में बहुत ज़्यादा न हो। इसलिए हम ऐसे बायोमास के उत्पादन पर ध्यान देंगे जो औद्योगिक कच्चे माल का स्रोत बन सके तथा एक विकेन्द्रित औद्योगिक प्रणाली का आधार बन सके।

सामग्रियों के बाद हमारे पास ऊर्जा के बहाली योग्य स्थानीय स्रोत हैं : मुख्यतः सौर ऊर्जा, अंशतः जल ऊर्जा तथा संग्रहित सौर ऊर्जा के स्रोत के रूप में बायोमास। आगे हम इनमें से हरेक की बारीकियों पर ध्यान देंगे किन्तु यहां हम इन सबका एक सामान्य गुण बताना चाहेंगे जिसकी वजह से ये बहुत महत्वपूर्ण हैं : कि ऊर्जा के ये स्रोत व्यापक रूप से बिखरे हुए हैं। ऊर्जा के अन्य गैर-बहाली योग्य स्रोतों व सामग्रियों की तुलना में इनका वितरण कहीं ज़्यादा समान रूप से हुआ है। अतः ऊर्जा के उपरोक्त स्रोत समतामूलक विकेन्द्रित औद्योगिकरण की दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त हैं। यही गुण उनकी सीमा भी है। आगे हम इन सीमाओं से निपटने की चर्चा भी करेंगे। हमारे लिए खास दिलचस्पी की चीज़ बायोमास है जो ऊर्जा व वस्तु दोनों ही सूचियों में आती है। बायोमास वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है।

और अन्ततः हम बाहरी इनपुट का उपयोग काफी कम तथा सोच-समझकर करेंगे। बाहरी इनपुट में सामग्री व ऊर्जा दोनों शामिल हैं। ये बाहरी इनपुट केंद्रीकृत, गैर-बहाली योग्य तंत्रों से आएंगे।

ये तीनों याने स्थानीय सामग्री, ऊर्जा तथा बाहरी इनपुट का सीमित इस्तेमाल मिलकर एक बुनियाद प्रदान करते हैं, जिसका महत्व अभी समझा नहीं गया है। हम यहां किसी सुदूर भविष्य की बातें नहीं कर रहे हैं। हम ऐसी टेक्नॉलॉजी की बात कर रहे हैं जो व्यावहारिक रूप से आज़माई जा चुकी हैं या विकास के ऐसे मुकाम पर हैं कि उन्हें अगले एकाध दशक में धरातल पर उतारा जा सकेगा। इस तरह के विकास की अनंत संभावनाएं हैं किन्तु हमारा मकसद यहां हर संभावना की विस्तृत चर्चा करना नहीं है। यहां हम मात्र दो क्षेत्रों की चर्चा उदाहरण स्वरूप करेंगे।

इन्फ्रास्ट्रक्चर व ऊर्जा

हमने उदाहरण के तौर पर जिन दो क्षेत्रों का चयन किया है वे हैं बुनियादी ढांचा (इन्फ्रास्ट्रक्चर) या निर्माण कार्य और ऊर्जा। इस चयन के कई कारण हैं। इन्फ्रास्ट्रक्चर या निर्माण-कार्य विकास की पूर्व शर्त भी है और विकास का हमसफर भी। एक अनुमान के मुताबिक कुल विकास व्यय का 60 प्रतिशत हिस्सा निर्माण गतिविधि में ही लगता है। इसके तहत कई कार्य होते हैं और यह मात्र गृह निर्माण तक सीमित नहीं है, जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है। निर्माण गतिविधि के तहत जल संरक्षण, परिवहन, वितरण तंत्र, बस्तियों के लिए पानी प्रदाय व स्वच्छता प्रणालियां, निकास, जल व उसके उपचार के तंत्र, बाढ़ नियंत्रण व भूक्षरण रोकथाम प्रणालियां, तटीय व अन्दरूनी जलमार्ग, औद्योगिक प्रतिष्ठानों के बुनियादी ढांचे आदि सभी आते हैं। इसके अलावा बहाली योग्य ऊर्जा सुविधा के भी कई तत्व निर्माण गतिविधि की मांग करते हैं - मसलन सड़कें, नालियां, बांध, नहरें, जलाशय, तटबंध, तथा अन्य निर्माण कार्य। और भवन निर्माण तो है ही। दरअसल विकास स्वयं निर्माण क्षेत्र की मांग बढ़ाता है - विकास कार्य में होने वाले खर्च के ज़रिये भी और विकास के एक परिणाम के रूप में भी। अतः यह एक महत्वपूर्ण मसला है कि किस तरह के निर्माण कार्य को प्रोत्साहन दिया जाता है तथा उसके फलस्वरूप यह क्षेत्र क्या रूप अख्तियार करता है। दूसरी बात यह है कि इन्फ्रास्ट्रक्चर की स्थिति विकास की रफ्तार को निर्धारित करती है तथा इन्फ्रास्ट्रक्चर टेक्नॉलॉजी काफी हद तक यह भी निर्धारित करती है कि इस विकास की प्रकृति क्या होगी एवं इसके लाभों का वितरण किस किस्म का होगा।

ऊर्जा क्षेत्र उद्योगों के लिए ज़रूरी इन्फ्रास्ट्रक्चर प्रदान करता है। ऊर्जा क्षेत्र का स्वरूप काफी हद तक औद्योगिक विकास के स्वरूप का निर्धारक होता है। बायोमास के उपयोग से गैर-बहाली योग्य ऊर्जा के हिस्से को कम करने में मदद मिल सकती हैं। वास्तव में यदि हम टिकाऊ समृद्धि के एक साधन बतौर विकेन्द्रित औद्योगिक समाज की बात करना चाहते हैं, तो विकेन्द्रित रूप में ऊर्जा की उपलब्धता इसकी अहम शर्त होगी। विकेन्द्रित ऊर्जा के बगैर औद्योगिक उत्पादन केन्द्रीकृत ही रहेगा।

ऊर्जा व निर्माण दोनों ही क्षेत्रों में टेक्नॉलॉजी का काफी विकास हो चुका है। दोनों ही क्षेत्रों में या तो आजमाई हुई तकनीकें-टेक्नॉलॉजी उपलब्ध हैं या परीक्षण के अंतिम चरण में हैं अथवा टेक्नॉलॉजी के विभिन्न घटक मौजूद हैं जिन्हें नए ढंग से एक साथ जोड़ने की देर है। संक्षेप में यों कहा जा सकता है कि इन क्षेत्रों में जिस चीज़ का अभाव है, वह है दिशा और दिशा के अभाव में हम इन असंख्य संभावनाओं को देख नही पा रहे हैं।

नई तकनीक

अब भवनों की ऐसी डिज़ाइनें उपलब्ध हैं जिनमें सीमेंट व लोहे की खपत पहले से पांच गुना कम हो जाती है, लागत में काफी कमी आ जाती है तथा रूढ़िगत तकनीक की तुलना में परिवहन लागत दस गुना कम होती है। 10 मीटर चौड़ाई तक के सामुदायिक भवनों, लघु उत्पादन इकाइयों तथा 3 मंज़िले रिहाइशी व व्यावसायिक भवनों की डिज़ाइनें भी उपलब्ध हैं। अधिकांश निर्माण कार्य के लिए लकड़ी संरक्षण व भाप और सीज़निंग के इस्तेमाल से उसे सीधा बनाने का काम छोटी-छोटी औद्योगिक इकाइयों में करना संभव है। इस काम में गोलाकार आरी तथा ड्रिल जैसे साधारण औज़ारों की ही ज़रूरत पड़ती है। तकनीक में और सुधार होने पर गर्मी व दबाव के इस्तेमाल से लकड़ी की गुणवत्ता और बढ़ाई जा सकेगी। ऐसी प्रोसेस्ड व कम्प्रेस्ड लकड़ी की ताकत स्टील से 50% होगी। तब लेमिनेटेड तथा मुड़ी हुई लकड़ी अपने वज़न से कम से कम तीन गुना स्टील का काम देगी। भवनों के अलावा इस तरह की लकड़ी का उपयोग अन्य कई कार्यों मसलन डोंगियों, भण्डारण, लेमिनेटेड रोटर्स, बड़ी पवनचक्की, सौर संग्रह इकाइयों आदि में किया जा सकता है। ये वे कार्य हैं जो एक विकेन्द्रित, आत्म निर्भर औद्योगिक विकास को संभव बनाने में सक्षम हैं। एक वैकल्पिक प्रणाली में inter modal transfers तथा भण्डारण एवं एकतरफा परिवहन के लिए पात्रों के रूप में इन चीजों की महत्वपूर्ण भूमिका हैं।

एक अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र पाइप टेक्नॉलॉजी का है। पानी प्रदाय के लिए हमने जिस तंत्र को अपनाया है उसमें तो यह महत्वपूर्ण है ही, बल्कि इसके अन्य कई इस्तेमाल भी हैं। पाइप हेतु कई डिज़ाइनें उपलब्ध हैं परन्तु एक खास डिज़ाइन का ज़िक्र यहां समीचीन होगा। इसमें लेमिनेटेड लकड़ी के छल्ले प्रमुख घटक होते हैं। अपारगम्य बनाने के लिये इन पर एक अस्तर चढ़ाया जाता है तथा अन्दरूनी व बाहरी अस्तर सीमेंट-गिट्टी-मिट्टी मिश्रण का चढ़ाया जाता है। पाइप का उपयोग कई जगह हो सकता है जैसे पानी, कारखाने से निकासित पानी, स्लरी व गैस आदि के परिवहन में। इस टेक्नॉलॉजी का उपयोग एकतरफा भारी परिवहन के लिए आसानी से हो सकता है जिसमें आमतौर पर बहुत पैसा खर्च करना पड़ता है और यह एक अवरोध साबित होता है।

इन्फ्रास्ट्रक्चर उद्योग के तेज विकास के लिए एक नवीन निर्माण उद्योग

जिस वैकल्पिक निर्माण टेक्नॉलॉजी की बात हम कर रहे हैं वह लगभग हर तरह के उपयोग के क्षेत्र में मैदानी परीक्षण से गुज़र चुकी है। इसका अहम पक्ष यह है कि इसमें टेक्नॉलॉजी विकास की एक स्पष्ट दिशा मौजूद है। यह दिशा है पूर्ववर्त्ती तकनीक के बराबर लागत में, ऊर्जा की भारी बचत, स्थानीय सामग्री का व्यापक उपयोग, तथा कामगारों के हुनर में सुधार की संभावना। और यह सब करते हुए कार्य अथवा सुविधा की गुणवत्ता में कोई समझौता नहीं। बगैर नवाचार के कोई टेक्नॉलॉजी विकास संभव नहीं है।

यहां जिन तकनीकों का ज़िक्र हो रहा है उनमें छोटे आकार (यानी 7.5 से 100 मि.मी. व्यास) की लकड़ी, प्राकृतिक रेशे, तथा पुष्टिकृत मिट्टी की तकनीक का इस्तेमाल होता है। इनके द्वारा बने घटकों को इस ढंग से जोड़ा जाता है कि हरेक को उसके गुणों के अनुरूप काम में प्रयुक्त किया जाए। डिज़ाइन का मूल सिद्धांत यह है कि पुष्टिकृत (रीएन्फोर्स्ड) मिट्टी और/या कांक्रीट से बने अवयव बाहरी भार को वहन कर लें, लकड़ी तनाव को वहन करे तथा स्टील का उपयोग जोड़ों व सुदृढ़ता प्रदान करने में हो। इस तरह से डिज़ाइन करने पर अधिकांश मामलों में स्टील व सीमेंट की खपत में 5 गुना कमी आ जाती है तथा तद्नुसार ऊर्जा की काफी बचत होती है। वास्तव में इसका अर्थ यह होगा कि उतनी ही पेट्रोलियम ऊर्जा से हम पूर्व की बनिस्बत 5 गुना ज़्यादा इन्फ्रास्ट्रक्चर विकसित कर पाएंगे। दूसरे शब्दों में उतनी ऊर्जा खर्च करके हम एक की बजाय पांच गांवों को इन्फ्रास्ट्रक्चर मुहैया करवा सकेंगे।

यहीं आकर बायोमास, यानी छोटे आकार की इमारती लकड़ी व रेशे, महत्वपूर्ण हो जाते हैं। यह गौरतलब है कि हम यहां उस इमारती लकड़ी की बात नहीं कर रहे हैं जो बड़े आकार की होती है और जिसे तैयार होने में बहुत समय लगता है। ऐसी बड़ी इमारती लकड़ी को तैयार होने में 20 से 40 साल का समय लगता है। इसके विपरीत हम छोटे आकार की जिस इमारती लकड़ी की बात कर रहे हैं उसे उपयोगी साइज़ तक पहुंचने में मात्र 3 से 5 साल का समय लगता है। इस लिहाज़ से ऐसी लकड़ी खेत वानिकी के लघु अवधि चक्र में बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। अतः इस तरह की लकड़ी परियोजना के सेवा क्षेत्र में लगने वाले 1/3 स्थाई पर्णाच्छादन से प्राप्त हो सकती है या अन्य पेड़ों से भी प्राप्त की जा सकती है। यही स्थिति रेशों की भी है। इन्हें तो कई जगहों पर पेड़ों के नीचे भी उगाया जा सकता है या खेत की मेड़ों पर या बिगड़ी ज़मीन पर भी लगाया जा सकता है। वास्तव में ऐसी प्रजातियां तो सेवा क्षेत्र से बाहर सार्वजनिक या निजी पड़ती ज़मीन पर भी लगाई जा सकती हैं। इनके उत्पाद ऐसे औद्योगिक इनपुट होते हैं जो जल्दी-जल्दी प्राप्त हो सकते हैं यानी इनका फसल चक्र कम अवधि का होता है। इस तरह से गांव की सार्वजनिक ज़मीन को कमज़ोर तबकों को आंवटित करने का महत्व ही बदल जाता है। बहरहाल हम इस मुद्दे पर आगे और बात करेंगे। ऐसी ज़मीन पर उत्पादित बायोमास सेवा क्षेत्र में पैदा बायोमास के अतिरिक्त होगा। इस टेक्नॉलॉजी का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि सारी डिज़ाइनें मॉड्यूलर होती हैं तथा अलग-अलग स्वतंत्र घटकों से मिलकर बनी होती हैं। अतः यह ज़रूरी नहीं होता कि इन्हें उपयोग स्थल पर ही बनाया जाए। इन्हें अन्यत्र बनाकर उपयोग स्थल पर लाकर जोड़ा जा सकता है। संक्षेप में, ये प्रीफेब्रिकेटेड होती हैं। चूंकि इन डिज़ाइनों में स्टील व सीमेंट का अंश बहुत कम होता है और घटकों को पहले से तैयार किया जा सकता है, इसलिए इनके उत्पादन के लिए भारी भरकम निवेश की ज़रूरत नहीं होती। इनकी टेक्नॉलॉजी आसान है। अतः इन घटकों के उत्पादन के दौरान जो हुनर विकसित होता है वह आगे उसी घटक तक सीमित नहीं रह जाता। स्थानीय रेत व मिट्टी, छोटे आकर की इमारती लकड़ी, रेशे और लकड़ी, रेशे और थोड़ी मात्रा में स्टील व सीमेंट के उपयोग से नाना प्रकार की वस्तुएं विकेन्द्रित ढंग से उत्पादित की जा सकती हैं: बीम व कॉलम, छत के ब्लॉक्स, दीवालों के लिए मिट्टी के ब्लॉक, दरवाज़े, खिड़कियां आदि।

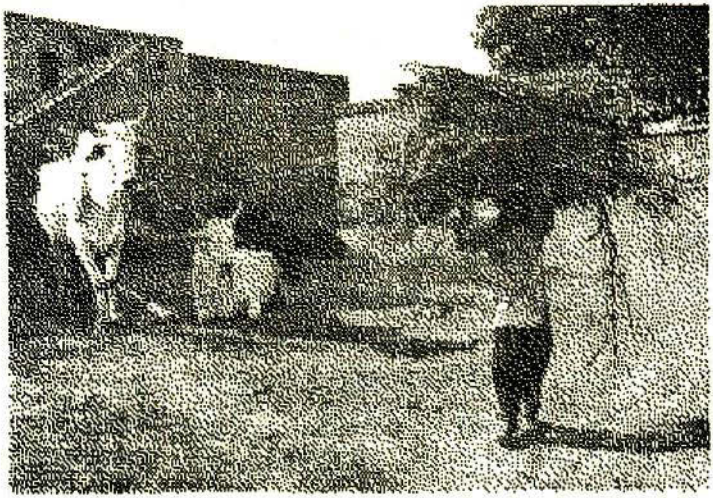

आज स्थापित निर्माण उद्योग ज़बर्दस्त कारोबार कर रहा है। परन्तु इसमें नई उत्पादन तकनीक या सांगठनिक स्वरूपों को अपनाने का कोई प्रलोभन या प्रोत्साहन नहीं है। अलबत्ता ये नई तकनीकें व सांगठनिक ढांचे समाज के कमज़ोर तबकों के लिए महत्वपूर्ण हैं। यदि संभावनाएं पता हों तथा उपयुक्त संस्थागत स्वरूप विकसित हो पाए तो छोटे व भूमिहीन किसानों, कारीगरों व अन्य कमज़ोर तबकों के लिए नए अवसर खुल सकते हैं।

वास्तव में यदि बिखरे रूप में ऊर्जा उपलब्ध हो जाए, तो कई सारे अवसर खुल जाएंगे और ये अवसर मात्र इन्फ्रास्ट्रक्चर उद्योग तक सीमित नहीं रहेंगे। और निर्माण अवयवों में भी उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार होगा, मज़बूती बढ़ेगी, उत्पाद ज़्यादा टिकाऊ तथा नफीस होंगे तथा हुनर में सुधार होगा। हुनर में यह सुधार उनके मौजूदा हुनर से बहुत हटकर नहीं होगा जबकि आधुनिक ऊर्जा सघन निर्माण क्षेत्र एकदम नए हुनर की मांग करता है। हुनर विकास दरअसल टेक्नॉलॉजी के विकास व अनुकूलन में सक्रिय भागीदारी का अंग है। उपरोक्त तकनीकों में इस तरह के विकास व अनुकूलन की काफी गुंजाइश मौजूद है।

नए निर्माण उद्योग में आमदनी की गुंजाइश तथा ऊर्जा बचत की संभावना

हमारी गणना के मुताबिक छोटे आकार की इमारती लकड़ी पर न्यूनतम 3000 रुपए प्रति टन का मूल्य इज़ाफा किया जा सकता है तथा उत्पादक को 1000 रुपए प्रति टन की कीमत से भुगतान किया जा सकता है। यानी प्रति टन आमदनी न्यूनतम 4000 रुपए है। यदि हम रेशों, स्थानीय मिट्टी उत्पाद, मिट्टी के ब्लॉक आदि के ज़रिये मूल्य इज़ाफे को भी जोड़ें तो यह संभव है कि प्रति टन बांस या छोटे आकार की इमारती लकड़ी से 6000 रुपए की आमदनी प्राप्त की जा सकती है। इसी प्रकार से हम यह भी गणना कर सकते हैं कि इस तरह के कच्चे माल के इस्तेमाल से ऊर्जा में कितनी बचत होगी। यदि हम एक टन लकड़ी को 700 किलोवॉट घण्टे के बराबर मानें तो ज़ाहिर है कि बांस व अन्य छोटे आकार की इमारती लकड़ी के उपयोग से प्रति टन 3500 किलोवॉट घण्टे ऊर्जा की बचत होगी।

ये सारे आंकड़े न्यूनतम स्तर पर हैं क्योंकि यदि हम सीधे ऊष्मा और/या बिजली के रूप में ऊर्जा उत्पादन को छोड़ दें, तो प्रोसेस्ड बायोमास के अन्य किसी भी उपयोग में आमदनी व ऊर्जा बचत दोनों ही इन आंकड़ों से कहीं ज़्यादा होती है। ये अन्य उपयोग जड़ी-बूटियों, कीटनाशक, गैर-खाद्य व खाद्य तेल, रेज़िन्स व अन्य रसायनों के रूप में हो सकते हैं। ऊष्मा व बिजली उत्पादन की चर्चा अलग से की गई है। गणना व तात्कालिक संभावनाओं के लिहाज़ से हम मात्र छोटे आकार की इमारती लकड़ी प्रोसेसिंग की ही चर्चा करेंगे। वास्तव में उपयुक्त तो यह होगा कि यथासंभव विविधतापूर्ण बायोमास मिश्रण का उपयोग किया जाए।

बहाली योग्य ऊर्जा सुविधा तथा सह उत्पादन प्रणालियां

उपयोगकर्त्ता के नज़रिये से देखें तो कुछ हद तक जैव-ईंधन को छोड़कर, शेष सारे बहाली योग्य ऊर्जा संसाधन खासे बेतरतीब और परिवर्तनशील होते हैं, इनके संग्रह हेतु महंगे उपकरण लगते हैं, मात्रात्मक पैमाने के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं तथा आमतौर पर इन्हें बड़े स्रोत के रूप में एकत्रित करना असंभव नहीं मगर मुश्किल होता है। ऊपर से लगता है कि बहाली योग्य ऊर्जा संसाधनों की इस प्रकृति की वजह से ही इनका विकास व बड़े पैमाने पर

उपयोग नहीं होता है। परन्तु वास्तव में मुख्य समस्या शोध की दिशा में रही है। शोध की दिशा यह रही है कि बहाली योग्य ऊर्जा स्रोतों की गुणवत्ता को जीवाष्म ईंधन की बराबरी पर लाया जाए। इस कोशिश में बहाली योग्य ऊर्जा की लागत बढ़ जाती है तथा इसका उपयोग करने में ज़्यादा मात्रा में जीवाष्म ऊर्जा खर्च होती है। इसकी बजाय बेहतर होगा कि बहाली योग्य ऊर्जा स्रोतों को सह-उत्पादन प्रणालियों के अंग के रूप में देखा जाए जिसमें ऊर्जा के एकाधिक स्रोतों को एक प्रणाली में मिश्रित किया जाता है। इस तरह से प्रत्येक स्रोत की सीमाओं को किसी अन्य स्रोत के जुड़ाव से हल किया जा सकता है। इस तरह की सह-उत्पादन प्रणाली का एक उदाहरण कोयला-सौर या जैव-ईंधन-सौर सह-उत्पादन तंत्र है। कोयला और जैव ईंधन कहीं ज़्यादा लचीले स्रोत हैं। इस तरह के सह उत्पादन तंत्र में इनका उपयोग सौर ऊर्जा की परिवर्तनशीलता की क्षतिपूर्ति के लिए किया जा सकता है तथा ज़रूरी हो, तो उच्च तापमान या बड़ा पैमाना हासिल करने के लिए भी किया जा सकता है। इसी प्रकार का एक और मिश्रित तंत्र पवन-पन बिजली सह उत्पादन का है मगर यहां हम सौर सह उत्पादन तंत्र का एक ही उदाहरण देंगे।

बहाली योग्य ऊर्जा की परिवर्तनशीलता तथा लागत पर मांग-प्रबन्धन का भी बहुत असर पड़ता है। जीवाष्म ईधन आधारित ऊर्जा उत्पादन इकाइयां आमतौर पर काफी बड़ी होती हैं और मात्र ऊर्जा उत्पादन का काम करती हैं। बहाली योग्य ऊर्जा उत्पादन इकाइयां साधारणतः छोटी से मध्यम आकार की होंगी। इस तरह की इकाइयों को किसी एकीकृत कार्यस्थल पर प्रोसेस उद्योग से जोड़ा जा सकता है तथा फालतू ऊष्मा का पुनः उपयोग करके अधिकतम लाभ उठाया जा सकता है। वैकल्पिक प्रस्ताव में ऐसे मध्यम आकार के विकेन्द्रित एकीकृत कार्यस्थलों की कल्पना की गई है जिनमें ऊर्जा उत्पादन और बायोमास प्रोसेसिंग का मिला-जुला काम होगा। इससे ऊर्जा लागत और भी कम हो जाएगी। इसीलिए कार्यस्थल के सामूहिक नियंत्रण का महत्व है। मांग प्रबन्धन का एक और तरीका यह है कि ऊर्जा उत्पादन को पम्पिंग व अन्य कार्यों में प्रयुक्त किया जाए और जब ऊर्जा की ज़रूरत न हो, तब इसे केन्द्रीय ग्रिड को बेचा जाए। इसके चलते संभावना बनेगी कि जब पम्पिंग की ज़रूरत स्थानीय ऊर्जा उत्पादन से पूरी न हो तब केन्द्रिय ग्रिड में से बिजली ली जाए।

इस प्रकार की सह उत्पादन प्रणालियों में बायोमास-सौर ऊर्जा या अन्य बहाली योग्य ऊर्जा संसाधनों को जोड़ने के कई तरीके हैं। सारी प्रणालियों के अलग-अलग घटकों की टेक्नॉलॉजी मौजूद है। इन्हें परस्पर जोड़ने की देर है।

ए.एस.टी.आर.ए. (अस्त्र) का तजुर्बा

हमारे द्वारा सुझाए गए किसी भी ऊर्जा-मिश्र का उपयोग न करके भी अस्त्र, इंडियन इंस्ट्रीट्यूट ऑफ साईन्स, बंगलौर ने अपने ग्रामीण ऊर्जा केंद्रों पर बायोमासजनित ईंधन व डीज़ल सह उत्पादन प्रणालियां स्थापित की हैं। इनसे बायोमास जनित ईंधन की संभावनाएं उजागर होती हैं। राजाबापैया और उनके साथियों ने कर्नाटक में पुरा ग्राम में बायोगैस आधारित प्रणाली का विवरण दिया है। यहां पर किसान बायोमास कचरा एकत्रित करते हैं और ऊर्जा प्रणाली को दे देते हैं। बदले में उन्हें जैविक उर्वरक मिल जाता है। इस प्रक्रिया में उत्पन्न बायोगैस को एक डीज़ल चलित पाईप-मूवर में भेजा जाता है। यह मूवर दोहरे ईंधन पर चलाया जा सकता है। इस सुविधा का मुख्य लक्ष्य घरेलू लाइटिंग और पेयजल पम्प करना है। 14 घन्टे इस इंजिन को चलाने की लागत 123 रुपए प्रति किलोवाट घन्टे आती है। होसहल्ली गांव में लकड़ी गैसीकरण पर आधारित प्रणाली स्थापित की गई है। यह भी घरेलू लाइटिंग और पेयजल

पम्पिंग का काम करती है। रविन्द्रनाथ व उनके सहकर्मियों द्वारा दिए गए विवरण के अनुसार लकड़ी उपलब्ध कराने के लिए 2 हैक्टर का जंगल लगाया गया है तथा ऊर्जा उत्पादन में लकड़ी जनित गैस और डीज़ल का मिलाजुला उपयोग किया जाता है। प्रति किलोवॉट घण्टा लागत 235 रुपए आती है। दोनों ही मामलों में उत्पादन इकाई पर पूंजीगत निवेश 30,000 रुपए प्रति किलोवॉट है। इस तजुर्बे से यह संभावना ज़ाहिर है कि शाम के अधिकतम भार को स्थानीय उत्पादन द्वारा वहन किया जा सकता है तथा ऐसे दूर-दराज़ के इलाकों को भी सुविधा दी जा सकती है जो मौजूदा वितरण प्रणाली के दायरे से बाहर हैं।

सौर सहउत्पादन प्रणाली की लागत का अनुमान

विश्व बैंक के अध्ययन से पता चलता है कि सन् 2000 तक सौर ऊर्जा की लागत लगभग जीवाष्म ईंधन आधारित ऊष्मा ऊर्जा के बराबर हो जाएगी। छोटे आकार की वजह से सौर ऊर्जा इकाइयों में कोई खास दिक्कत नहीं आती। ऊपर वर्णित एकीकृत कार्यस्थलों के चलते ऊष्मा ऊर्जा को संग्रहित करने से जुड़ी समस्याएं काफी हद तक सुलझ जाती हैं। अतिरिक्त उत्पादन को या तो ग्रिड में डाला जा सकता है या पनबिजली हेतु पानी संग्रह करने में प्रयुक्त किया जा सकता है। कई सारी मौजूदा रचनाओं को वर्तमान छोटे, मध्यम व बड़े जलाशयों में इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके अलावा कई सारे सिंचाई पंपों को भी पानी संग्रह के काम में लगाया जा सकता है। इससे अतिरिक्त निवेश की भी बचत होगी।

यहां हम सौर-जैव ईंधन-कोयला/गैस सह उत्पादन के द्वारा प्राप्त ऊर्जा की लागत की गणना करेंगे। यह गणना 40 से 200 किलोवॉट की छोटी इकाइयों और 2 से 4 मेगावॉट की मझोली इकाइयों के लिए की गई है। छोटी इकाइयों की डिज़ाइन बोरोले व उनके साथियों द्वारा तैयार "संग्राहक-संकेन्द्रक" डिज़ाइन के आधार पर बॉर्टन की डिज़ाइन के कुछ तत्वों को जोड़कर बनाई गई है। इस डिज़ाइन में पहले भाप बनाई जाती है जिससे कि भाप इंजिन चलाया जाता है। भाप इंजिन की डिज़ाइन आस्ट्रेलिया राष्ट्रीय विश्वविद्यालय द्वारा विकसित की गई है। अर्थात इस सौर-ऊष्मा सह उत्पादन इकाई हेतु ज़रूरी विभिन्न अवयवों की टेक्नॉलॉजी उपलब्ध है। यहां प्रस्तुत किए जा रहे आंकड़ों की जांच के लिए 2-3 साल का पायलट प्रोजेक्ट पर्याप्त होगा। 2 से 4 मेगावॉट की डिज़ाइन स्टीम टर्बाइन पर आधारित है जो सुगमता से बाज़ार में उपलब्ध है। चूंकि सौर-ताप ऊर्जा सन् 2000 के ऊर्जा चित्र में स्पष्ट स्थापित हो चुकी है, इसलिए यह उचित नहीं कहा जा सकता कि पवन, सौर-पन बिजली, प्राकृतिक गैस, जैव ईंधन द्वारा एकीकृत ऊर्जा उत्पादन पर गौर किए बगैर और उन्हें जोड़े बगैर बड़े-बड़े पनबिजली प्रोजेक्ट अंधाधुंध जारी रखे जाएं।

दो तरह की इकाइयों की अनुमानित लागतें आगे तालिका में दी गई हैं तथा विस्तृत विवरण परिशिष्ट में है। 40 किलोवॉट इकाई के लिए उत्पादन लागत 1.60 रुपए प्रति किलोवॉट घण्टा आती है और 2 मेगावॉट इकाई के लिए 1.18 रुपये प्रति किलोवॉट घण्टा। इसमें सौर अंश के निवेश पर 8% रिकवरी (1 प्रतिशत संचालन व रख रखाव, 3 प्रतिशत घिसारा, 4 प्रतिशत निवेश पर आंतरिक लाभ दर) रखी गई है जबकि गैर सौर अंश पर 14% (2% संचालन व रख रखाव, 4% घिसारा, 8% निवेश पर आंतरिक लाभ दर)। यदि हम 1.60 रुपए प्रति किलोवॉट घण्टा को लक्षित कीमत मानें तो 2 मेगावॉट की इकाई में सौर व गैर सौर दोनों अंगों पर 10% आंतरिक लाभ दर रखी जा सकती है।

लागतों की तुलना

इस वक्त राज्य बिजली बोर्ड 3 रुपए प्रति किलोवॉट घण्टा की दर से बिजली खरीदने को तैयार है। स्पष्ट है कि उपरोक्त लागत इससे कम ही है। दरअसल यदि हम उपरोक्त दोनों तरह की सह उत्पादन इकाइयों का मिला-जुला उपयोग करें तो प्रति किलोवॉट घण्टा औसत लागत 1.39 रुपए आएगी। औसत निवेश 44,500 रुपए प्रति किलोवॉट होगा। यह तुलनात्मक रूप से ठीक ही है और विदेशी कंपनियों द्वारा प्रस्तावित नई बिजली उत्पादन की क्षमता स्थापित करने की लागत के मुकाबले भी बुरा नहीं है।

दरअसल अभी लागत कम करने की बहुत गुंजाइश मौजूद है और हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि इस तरह की इकाइयों के कई अन्य फायदे भी हैं। मसलन सूखे क्षेत्रों में इन इकाइयों के काम के दिन बढ़ाए जा सकते हैं। यदि इन इकाइयों को वर्ष में 300 दिन चलाया जाए तो सौर उपकरण पर निवेश 40 किलोवॉट इकाई के मामले में 27,000 रुपए प्रति किलोवॉट रह जाएगा और 2 मेगावॉट इकाई में 22,000 रुपये प्रति किलोवॉट रह जाएगा। दूसरी बात यह है कि यहां हमने मात्र विद्युत ऊर्जा उत्पादन की बात की है और प्रोसेसिंग ऊष्मा का स्रोत सिर्फ अतिरिक्त फालतू ऊष्मा को माना है। अलबत्ता यदि हम और ज़्यादा ऊर्जा को सीधे प्रोसेसिंग ऊष्मा के रूप में इस्तेमाल करें तो ऊर्जा उपयोग की कार्यक्षमता और बढ़ जाएगी। तीसरी बात यह है कि ऐसी प्रणाली में ग्रिड के मुकाबले वितरण व परिवहन नुकसान बहुत कम होगा। फिर मांग के प्रबन्धन के ज़रिये प्रणालियां अधिकतम भार की तीव्रता को भी कम कर देती हैं।

तालिका 3.1
40 किलोवॉट और 2 मेगावॉट सहउत्पादन की लागत

मद	40 किलोवॉट इकाई	2 मेगावॉट इकाई
सौर उपकरणों पर निवेश	32,000 रुपए/किलोवॉट	27,000 रुपए/ कि.वॉ.
गैर सौर उपकरणों पर निवेश	20,000 रुपए/किलोवॉट	20,000 रुपए/कि.वॉ.
कुल उत्पादन		
कुल उत्पादित ऊर्जा	4000 कि.वॉ. घण्टा/वर्ष/कि.वॉ.	5840 कि.वॉ. घण्टा प्रति वर्ष/ कि.वॉ.
सौर	2000 कि.वॉ. घण्टा/वर्ष/कि.वॉ.	2000 कि.वॉ. घण्टा प्रति वर्ष/कि.वॉ.
जैव ईंधन	1000 कि.वॉ. घण्टा/वर्ष/कि.वॉ.	1920 कि.वॉ. घण्टा प्रति वर्ष/कि.वॉ.
जीवाष्म ईंधन	1000 कि.वॉ. घण्टा/वर्ष/कि.वॉ.	1920 कि.वॉ. घण्टा प्रति वर्ष/कि.वॉ.
ईंधन की लागत		
सौर	—	—
जैव ईंधन	1800 रुपए/वर्ष/कि.वॉ.	2064 रुपए/कि.वॉ./वर्ष
कोयला	2250 रुपए/वर्ष/कि.वॉ.	2476 रुपए/कि.वॉ/वर्ष
स्थिर लागत		
सौर अवयव	2560 रुपए/वर्ष/कि.वॉ.	2,160 रुपए/वर्ष/कि.वॉ.
गैर सौर अवयव	2800 रुपए/वर्ष/कि.वॉ.	2800 रुपए/वर्ष/कि.वॉ.
फालतू ऊष्मा लाभ	3150 रुपए/वर्ष/कि.वॉ.	2610 रुपए/वर्ष/कि.वॉ.
उत्पादन की लागत	1.60 रुपए/कि.वॉ. घण्टा	1.18 रुपए/कि.वॉ.घण्टा

पवन-पन बिजली से सम्बंधित मसले

पवन-पन बिजली सह उत्पादन के महत्व को समझने के लिए पहले यह समझना ज़रूरी है कि पवन ऊर्जा के उपयोग की क्या दिक्कतें हैं। हालांकि पवन ऊर्जा प्रचुरता से उपलब्ध है किन्तु यह निहायत परिवर्तनशील स्रोत है। पवन ऊर्जा की परिवर्तनशीलता में एक अतिरिक्त पेचीदगी यह है कि पवनचक्की का बिजली उत्पादन पवन की गति के घन के समानुपाती होता है। इसका मतलब यह है कि यदि पवन की गति 3 गुना हो जाए तो बिजली का उत्पादन 27 गुना होगा। पवन चक्की एक उम्दा पम्पिंग उपकरण है। किन्तु दिक्कत यह है कि अधिकांश इलाकों में जब पम्पिंग की ज़रूरत ज़्यादा होती है तब पवन गति कम होती है और जब पवन गति तेज़ होती है तब पम्पिंग की मांग कम होती है। जब परिवर्तनशीलता की समस्या के समाधान के लिए पवन चक्की को बिजली उत्पादन संयंत्र के साथ जोड़ा जाता है तो समस्या यह आती है कि संयंत्र महंगे हैं और इनमें ऐसे अवयवों का उपयोग होता है जो ऊर्जा-खर्ची हैं। अतः कुल ऊर्जा की प्राप्ति काफी कम हो जाती है। इस लिहाज़ से पवन-पन प्रणाली महत्वपूर्ण हो जाती हैं क्योंकि पनबिजली के साथ जोड़कर पवन ऊर्जा की खामियों से निपटना संभव है।

पवन-पन ऊर्जा का सिद्धांत बहुत आसान है। इसमें पवन ऊर्जा का इस्तेमाल करके पानी को एक निम्नस्तरीय जलाशय में से पम्प करके उच्चस्तरीय जलाशय में भर दिया जाता है। यानी एक तरह से पवन ऊर्जा को पानी की स्थिर ऊर्जा के रूप में संग्रहित कर लिया जाता है। परिवर्तनशीलता के बावजूद पवन की औसत उपलब्धता मौसमी रूप से काफी अच्छी होती है। यदि जलाशय की क्षमता कुछ दिनों के ऊर्जा उत्पादन के लिए उपयुक्त रखी जाए तो पनबिजली संयंत्र को इस तरह चलाया जा सकता है कि स्थिर उत्पादन मिलता रहे। यानी पवन-पन प्रणाली एक तरह से रेक्टिफायर के रूप में काम करती है जिसमें परिवर्तनशील इनपुट से स्थिर आउटपुट प्राप्त होता है।

पवन को पनबिजली उत्पादन से जोड़ने के कई तरीके हैं। यदि मानसूनी व मानसून पश्चात् प्रवाह काफी है तो पवन का उपयोग नदी प्रवाह पनबिजली उत्पादन के साथ जोड़कर किया जा सकता है। पवन व पन दोनों संयंत्र लगभग बराबर क्षमता के हो सकते हैं। यह तरीका ज़्यादा बारिश वाले इलाकों में मझौली परियोजनाओं के लिए सर्वोत्तम है। अन्य इलाकों में पनबिजली संयंत्र मूलतः पवन ऊर्जा का उपयोग करने का काम करेगा, पनबिजली अपने आप में कोई मायने नहीं रखेगी। पवन ऊर्जा संयंत्र को छोटी व मझोली सिंचाई परियोजनाओं में जोड़ा जा सकता है तथा अधिकतर लागत सिंचाई परियोजना का ही हिस्सा होगी। सिर्फ पवन ऊर्जा दोहन की लागत उस मद में जाएगी। इस तरह के एकीकरण में परस्पर परिवर्तनीय पम्प-मोटर और टर्बाइन-जनरेटर इकाई मझोली परियोजनाओं की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। जब ज़रूरी हो तब इन्हें पम्प की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है और जब ज़रूरी हो, तब विद्युत उत्पादन हेतु टर्बाइन की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है। यहां पवन गति की परिवर्तनशीलता का गुण खामी न रहकर सद्गुण बन जाएगा क्योंकि कम गति के समय बिजली की काफी मांग होती है और ज़्यादा गति के समय बिजली की मांग कम होती है। इसी प्रकार से छोटे संयंत्रों में छोटे चलित (मूवेबल) पम्प दोहरा काम कर सकते हैं।

यहां भी हमारी गणना के अनुसार यदि पवन और पन ऊर्जा तंत्रों को इस तरह जोड़ा जाए और पानी तंत्र निर्माण की लागत सिंचाई पर डाली जाए तो बिजली उत्पादन की लागत अन्य प्रणालियों की टक्कर में ज़्यादा नहीं है।

बिजली प्रणाली के किसी भी अवयव का परीक्षण करने की ज़रूरत नहीं है। हर अवयव एक स्थापित टेक्नॉलॉजी है। पवनचक्की जानी-मानी टेक्नॉलॉजी है। ज़रूरत इस बात की है कि इनके परस्पर तालमेल की जांच की जाए। बाकी सारे घटक भी तकनीकी दृष्टि से जांचे-परखे हैं। ज़रूरत पूरी प्रणाली की जांच करने की है।

अलबत्ता इस वक्त पवनचक्की के निर्माण में काफी ऊर्जा खर्ची उपकरण लगते हैं। खासतौर पर इसके लिए टॉवर बहुत ऊंचा इसलिए बनाना पड़ता है क्योंकि ऊर्जा का उत्पादन टॉवर की ऊंचाई के पांचवे घात के समानुपाती है- पवन गति और ऊंचाई का सम्बंध कुछ ऐसा ही है। पारंपरिक टेक्नॉलॉजी में इस टावर को बनाने में सीमेंट और इस्पात जैसी ऊर्जा खर्ची सामग्री का उपयोग होता है। टॉवर निर्माण में लकड़ी मिश्रित सामग्री के उपयोग को अपनाना होगा ताकि टॉवर निर्माण में होने वाला ऊर्जा खर्च कम हो तथा परिणामस्वरूप ऊर्जा उत्पादन में शुद्ध वृद्धि हो। बहरहाल यह चुनौती कठिन ज़रूर है मगर इसमें भी किसी टेक्नॉलॉजी चमत्कार की ज़रूरत नहीं होगी। दस वर्षों की अवधि में यह कार्य संपन्न किया जा सकता है बशर्ते कि दिशा सही हो।

एक इकाई की अनुमानित लागत नीचे तालिका 3.2 में दी गई है।

तालिका 3.2

100 किलोवॉट पवन-पन बिजली इकाई

(पन बिजली 100 किलोवॉट/ पवन बिजली 375 किलोवॉट रेटिंग)

पवन उपकरण पर निवेश (रुपए)		
पवनचक्की की नाभि व रोटर की लागत	2,10,000	
टावर की लागत	6,00,000	
पम्प की लागत	4,50,000	
पवन उपकरण पर कुल खर्च	14,70,000	
पन बिजली उपकरण की लागत (100 किलोवॉट रेटिंग)	12,00,000	
कुल खर्च	26,70,000	
ऊर्जा उत्पादन (युनिट)		
पवन ऊर्जा	2,00,000	
पन बिजली	1,44,000	
कुल उत्पादन	3,44,000	किलोवॉट घण्टे
16 प्रतिशत मुनाफा दर पर उत्पादन की लागत	1.25	रुपए प्रति किलोवॉट घण्टे

यदि हम बुनियादी सेवा औसतन 3000 घन मीटर प्रति परिवार मानें तो हमारे पास प्रति परिवार 4500 घन मीटर की संग्रह क्षमता होगी। यदि हम पवन-पन बिजली उत्पादन के लिए 10% बफर क्षमता लें और औसतन 2 मीटर गिरावट लें तो दैनिक बिजली उत्पादन 2 किलोवॉट घण्टे प्रति परिवार होगा। वर्ष में 250 दिन के संचालन के आधार पर सालाना प्रति परिवार 500 किलोवॉट घण्टे अतिरिक्त बिजली उपलब्ध होगी। यह बिजली मात्र पानी तंत्र में पवन-पन बिजली प्रणाली को जोड़ने से प्राप्त होगी। स्वतंत्र रूप से पवन ऊर्जा का दोहन करने की संभावना अलग है। परन्तु अधिकतर संभावना तटीय या ऊपरी इलाकों में है।

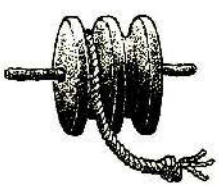

यह भी ज़रूरी है कि मांग प्रबन्धन के विभिन्न रास्ते भी आज़माए जाएं। मसलन खराब जल निकास वाले इलाकों में पवन ऊर्जा का इस्तेमाल निकास व्यवस्था में ही किया जा सकता है। यहां गौरतलब है कि हालैण्ड में पवन ऊर्जा का प्रमुख उपयोग निकास व्यवस्था में ही किया जाता है। पूरी प्रणाली कुछ इस तरह से बनाई गई है कि उपकरणों की शृंखला द्वारा पानी को 20 मीटर उठाया जा सके जबकि उस समय पम्पिंग उपकरणों की क्षमता मात्र 2-3 मीटर की ही थी।

सौर-जैव ईंधन तथा पवन-पन बिजली सहउत्पादन का महत्व

सौर-जैव ईंधन तथा पवन-पन सह उत्पादन का सर्वप्रथम महत्व तो यह है कि इनके द्वारा ऊर्जा विकेन्द्रित रूप से उपलब्ध हो जाती है। यह विकेन्द्रीकरण, कोयला, गैस, तेल भंडार जैसे स्वभावतः केन्द्रीकृत स्रोतों के वितरण से नहीं हो रहा है। ये स्रोत वितरण की मात्रा और दायरा बढ़ने के साथ-साथ महंगे होते जाते हैं। इनके वितरण में यातायात और ऊर्जा पर काफी बोझ पड़ता है और रुकावटें पैदा होने लगती हैं। यहां जिस विकेन्द्रीकरण की बात हो रही है वह स्वभावतः बिखरे हुए स्रोतों पर आधारित है। कोशिश यह है कि इन बिखरे हुए स्रोतों को एक हद से ज़्यादा एक स्थान पर संग्रहित न किया जाए, जो सिर्फ गैर-बहाली योग्य ऊर्जा स्रोतों में ही संभव है।

दूसरी बात यह है कि महाराष्ट्र के कई इलाकों में सिंचाई प्रणाली को बेहतर बनाने तथा पानी का समतामूलक वितरण करने के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा यह है कि पानी को पम्प करने की सुविधा उपलबध नहीं है। बिजली बोर्ड अपना नेटवर्क फैलाने में असमर्थ है और यह एक प्रमुख रुकावट बन गई है। यदि इन इलाकों में ऊर्जा उपलब्ध हो जाए तो यह संभव हो जाएगा कि यहां खेत-वानिकी, फलोद्यान व कृषि के मिले-जुले व्यवहार से भूमि व पानी का उचित इस्तेमाल हो सके। जब छोटी व मझोली सह उत्पादन इकाइयों में अतिरिक्त (सरप्लस) बिजली उत्पादन होने लगेगा तब राज्य के लिए यह लाज़मी होगा कि वह उतनी ही मात्रा में बिजली प्राथमिकता के आधार पर उपलब्ध कराए। यह स्थिति संक्रमण अवधि में रहेगी, जब तक कि ये इलाके अपनी सह उत्पादन सुविधाओं को पूरी तरह स्थापित नहीं कर लेते हैं।

यहां वर्णित विकेन्द्रीकरण की तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि विकेन्द्रीकरण मात्र खपत (उपयोग) का नहीं हो रहा है बल्कि उत्पादन क्षमता का हो रहा है। यह बिन्दु अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है। यह ऊर्जा में आत्म निर्भरता का आधार बन सकता है और स्थानीय व केन्द्रीय तंत्रों के आपसी सम्बंधों को पुनर्परिभाषित करने की क्षमता रखता है। नए ढांचे में केन्द्रीय तंत्र से मिलने वाले इनपुट आत्मनिर्भरता को स्थायित्व प्रदान करने का काम करेंगे जबकि आज बाहरी इनपुट मात्र निर्भरता बढ़ाते हैं।

इसके अलावा सौर-जैव ईंधन और पवन-पन बिजली प्रणालियां परस्पर पूरक हैं: जिन इलाकों में पवन-पन क्षमता ज़्यादा है वहां आमतौर पर सौर ऊर्जा क्षमता कम है। इसका उलटा भी सही होता है। मसलन तटवर्ती क्षेत्रों में बारिश ज़्यादा होती है, बादल वाले दिन ज़्यादा होते हैं। लिहाज़ा सौर ऊर्जा कम उपलब्ध होती है। परन्तु पवन गति औसतन काफी ज़्यादा होती है, खास मौसमों में तो पवन गति बहुत ज़्यादा होती है। फलस्वरूप पवन बिजली भी ज़्यादा बनाई जा सकती है। भारतीय उपमहाद्वीप के अन्य इलाकों में सौर-ऊर्जा की उपलब्धता कहीं ज़्यादा है। सौराष्ट्र जैसे कुछ इलाकों में तो सौर व पवन दोनों ही विपुल मात्रा में उपलब्ध हैं।

एकीकृत कार्यस्थल-सह-उत्पादन इकाइयां

यहां थोड़ा रुककर देखते हैं कि हम क्या-क्या चर्चा कर चुके हैं। सबसे पहली कि हमने (ऊष्मा व बिजली रूपी) ऊर्जा के इस्तेमाल से बायोमास को औद्योगिक उत्पादों में तब्दील करने की संभावना पर विचार किया। इसके आधार पर विकेन्द्रित प्रोसेसिंग उद्योग का गठन हो सकता है। दूसरी बात यह कि हमने बायोमास-सौर-जीवाष्म ईंधन तथा

पवन-पन बिजली सह उत्पादन बिजली प्रणाली पर गौर किया। इसके ज़रिये ऊर्जा का एक विकेन्द्रित स्रोत प्राप्त होगा। यहां हम यह प्रस्ताव दे रहे हैं कि इन दो चीज़ों को एक इकाई के रूप में विकसित किया जा सकता है यानी कार्यस्थल-सह-उत्पादन इकाइयां।

यह एक ऐसी अवधारणा है जिसके तहत् एक ही जगह पर ऊर्जा उत्पादन तथा बायोमास प्रोसेसिंग की सुविधा उपलब्ध होगी। इस प्रणाली के लाभ ज़ाहिर हैं। इसमें जो फालतू ऊष्मा पैदा होगी उसे वहीं इस्तेमाल किया जा सकता है। इससे ऊर्जा उत्पादन तंत्र की कार्यक्षमता बढ़ेगी। इसमें बायोमास प्रोसेसिंग की संभावनाएं भी बढ़ती हैं। इन इकाइयों के लिए यदि लोग एक बायोमास पूल का निर्माण करें तथा इसे संसाधनहीन लोगों के लिए प्राथमिकता के आधार पर उपलब्ध करा दें तो ये इकाइयां चल सकती हैं। दरअसल हमारा सुझाव यह है कि इन बहाली योग्य संसाधनों (यानी बायोमास तथा ऊर्जा दोनों) को सामूहिक सम्पदा माना जाए तथा इनका उपयोग तदनुसार बुनियादी व आर्थिक सुविधा में भेद पर आधारित हो। यह सामूहिक सम्पदा की अवधारणा को और विस्तार देगा। इस पर और चर्चा ज़रूरी है।

सामूहिक सम्पदा, संस्थागत स्वरूप और जीविका के अवसर की परिभाषाएं

हम जो सुझाव दे रहे हैं वह एक मायने में उसी दृष्टिकोण का विस्तार है जो हमने पानी के सम्बंध में अपनाया था। पानी को हमने एक तरह से सामूहिक सम्पदा माना है और वहां वर्णित नीति को एक अलग ढंग से भी व्यक्त किया जा सकता है। सामूहिक संसाधनों के सन्दर्भ में पहली प्राथमिकता यह होनी चाहिए कि इनका टिकाऊ उपयोग करके जीवन निर्वाह की ज़रूरतें पूरी की जाएं। जीवन निर्वाह की ज़रूरतें पूरी होने के बाद ही इन संसाधनों को आर्थिक दोहन हेतु मुहैया कराया जाना चाहिए और वह भी इस शर्त के साथ कि टिकाऊपन सुनिश्चित हो। एक अर्थ में हम सारे स्थानीय इकोसिस्टम संसाधनों को लेकर एक समान नीति प्रस्तावित कर रहे हैं। ये संसाधन सबसे पहले जीवन निर्वाह की ज़रूरतों, खासकर कमज़ोर तबकों की ज़रूरतों की पूर्ति के लिए इस्तेमाल होना चाहिए। ज़रूरतों में होने वाला विस्तार भी इसमें शामिल है। इसके बाद ही ये संसाधन आर्थिक दोहन के लिए मुहैया कराए जाने चाहिए। यहां भी टिकाऊपन का ख्याल रखा जाना चाहिए। इस बात की थोड़ी विस्तृत चर्चा ज़रूरी है क्योंकि इसी परिप्रेक्ष्य में हम इन्फ्रास्ट्रक्चर व ऊर्जा उद्योग को देख रहे हैं।

आज की तारीख में इन स्थानीय इकोसिस्टम संसाधनों के महत्त्व को पहचानना निहायत ज़रूरी है। आज ये संसाधन एक विपुल संभावना के द्योतक हैं किन्तु साथ ही यह खतरा भी मंडरा रहा है कि यह संभावना हमेशा के लिए खत्म हो सकती है। इनमें से कई संसाधनों को सचमुच पहचाना नहीं गया है- मसलन कचरा या छोटे पनबिजली या पवन ऊर्जा या सौर ऊर्जा संसाधन। इन संसाधनों के व्यापक परिमाण के बावजूद अभी तक इनके सन्दर्भ में उपयोग या मिल्कियत के निजी अधिकार स्पष्ट परिभाषित या स्थापित नहीं हुए हैं। अव्वल तो ये अभी व्यावसायिक या आर्थिक संसाधनों में तब्दील नहीं हुए हैं और दूसरे कि इनके उपयोग या स्वामित्व के अधिकार अभी भी ढुलमुल स्थिति में हैं। किन्तु दूसरी ओर हम एक ऐसे दौर में हैं जब बिना सोचे समझे निजीकरण को ही उदारीकरण व वैश्वीकरण का एकमात्र रूप बताकर पेश किया जा रहा है। परन्तु दुनिया भर में आज इन संसाधनों के महत्व को पहचाना जाने लगा है और इसलिए बहुत संभव है कि इनका भी उसी तरह निजीकरण कर दिया जाए और आत्मनिर्भर समुदायों पर आधारित

टिकाऊ व समतामूलक समृद्धि के रास्ते हमेशा के लिए बन्द हो जाएं। इसलिए यह निहायत ज़रूरी है कि हम इनके महत्व को तत्काल पहचानें और इनके उपयोग के लिए एक नीति पर अविलम्ब विचार करें, चाहे इनके वास्तविक दोहन में एकाध दशक का समय और लग जाए। इसीलिए सरदार सरोवर के विकल्प के इस प्रस्ताव में हमने यह तीसरा खण्ड जोड़ा है क्योंकि यह शुरुआत से ही मद्दे नज़र रखने की बात है।

यहां हमने एक नए निर्माण उद्योग हेतु जो सुझाव दिए हैं वे दरअसल इस बात को उजागर करते हैं कि सारे स्थानीय इकोसिस्टम संसाधनों के सन्दर्भ में क्या किया जाना चाहिए। अतः इन सुझावों को उदाहरण के रूप में ही देखा जाना चाहिए। हमारा सुझाव यह है कि ऐसे सारे संसाधनों को सामूहिक सम्पदा माना जाना चाहिए तथा प्राथमिक रूप से इनका इस्तेमाल लोगों के जीवन निर्वाह की ज़रूरतें पूरी करने में करना चाहिए। इसके लिए दोहरी हरकत की आवश्यकता होगी- एक सरकार की ओर से एवं दूसरी लोगों व उनके संगठनों की ओर से।

हम नहीं समझते कि कड़े कानून बनाकर और इन संसाधनों का नियंत्रण राज्य के हाथों में सौंपने से कोई खास लाभ होगा। राज्य की भूमिका तो मात्र इतनी है कि वह इनके विकास में मदद करे और ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करे कि इन संसाधनों का नियंत्रण, टिकाऊ व समतामूलक उपयोग की शर्तों के तहत, स्थानीय समुदायों को सौंपा जा सके।

इस सन्दर्भ में ज़्यादा ज़िम्मेदारी तो विभिन्न आंदोलनों, सामाजिक और स्वैच्छिक संस्थाओं एवं खुद स्थानीय समुदायों पर आ जाती है। इन संसाधनों के महत्व को पहचानना तथा स्थानीय समुदायों और संसाधन-निर्धन लोगों द्वारा इनके टिकाऊ व समतामूलक इस्तेमाल के ज़रिये ही टिकाऊ समृद्धि का रास्ता खुल सकता है। संसाधनों को तीन प्रमुख श्रेणियों में रखा जा सकता है :

(1) बायोमास संसाधन जिन्हें संग्रहित किया जाएगा

(2) कचरा व अन्य स्थानीय प्रोसेस योग्य व बहाली योग्य संसाधन तथा

(3) बहाली योग्य ऊर्जा की सुविधाएं तथा एकीकृत कार्यस्थल जिनका विवरण हम आगे देंगे।

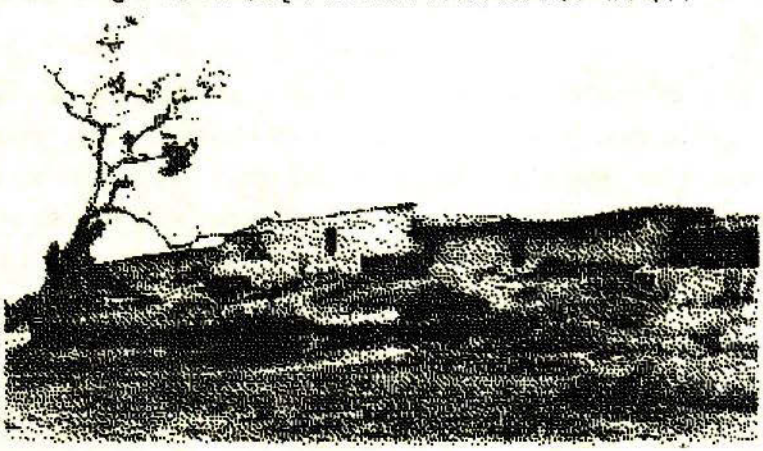

बायोमास कोष

अनाज, चारा व ईंधन कोष, छोटे आकार की प्रोसेस योग्य लकड़ी व रेशों का कोष, अन्य बायोमास कोष - विभिन्न लोगों द्वारा दिए गए उचित योगदान से बनाया जाएगा। योगदान की मात्रा स्थानीय समुदाय द्वारा तय की जाएगी। बहाली योग्य ऊर्जा समेत सारे संसाधनों पर समुदाय का पूरा अधिकार होगा। समुदायों को इस अधिकार के उपयोग हेतु तथा इन संसाधनों के दोहन के लिए उपयुक्त संस्थागत ढांचे बनाने होंगे।

इन कार्यों के लिए एक पूर्व निर्धारित संस्थागत ढांचा होना ज़रूरी नहीं है। कई विभिन्न संस्थागत स्वरूपों से इन उद्देश्यों की पूर्ति संभव है। सहकारी समितियां, पंजीकृत सोसायटी, यूनियन या यहां तक कि गैर मुनाफा व संयुक्त स्टॉक कंपनियां आदि में से समुदाय जिसे उपयुक्त समझे अपनाए, बशर्ते कि इनके ज़रिये संसाधनों पर समुदायों का पूरा नियंत्रण बन पाए ताकि संसाधनों का टिकाऊ इस्तेमाल हो और संसाधनहीन लोगों को प्राथमिकता मिले।

ज़ाहिर है कि कोई भी संस्थागत ढांचा खुद आपोआप टिकाऊ इस्तेमाल या समतामूलक बंटवारे की गारंटी नहीं होता। इसे सुनिश्चित करने के लिए कमज़ोर तबकों की जागरूकता, संगठन और दृढ़ कार्यवाही ज़रूरी होती है। नीचे हम इन्फ्रास्ट्रक्चर व ऊर्जा उद्योग की चर्चा करेंगे जिससे यह स्पष्ट हो जाएगा कि ये संसाधन किस तरह के अवसरों के प्रतीक हैं।

एकीकृत कार्यस्थलों पर ऊर्जा व प्रोसेसिंग सुविधाएं

यहां उदाहरण बतौर हम सौर-जैव ईंधन-कोयला सहउत्पादन इकाई पर आधारित दो किस्म के कार्यस्थलों की बात करेंगे। एक कार्यस्थल 40 किलोवॉट स्थापित क्षमता पर और दूसरा कार्यस्थल 2 मेगावॉट स्थापित क्षमता पर आधारित है। यह माना जा सकता है कि जैव ईंधन उन परिवारों द्वारा प्राप्त होता है जो सेवा क्षेत्र में हैं तथा हर परिवार 1 किलोवॉट स्थापित क्षमता के लिए ज़रूरी जैव ईंधन प्रति वर्ष देता है। अर्थात् एक 40 किलोवॉट क्षमता वाली एकीकृत इकाई का स्वामित्व 40 परिवारों का होगा जो उसे चलाते भी हैं तथा रख-रखाव भी करते हैं। 2 मेगावॉट एकीकृत कार्यस्थल पर 2000 परिवारों का नियंत्रण होगा।

हमने पहले कहा था कि इन सुविधाओं के उपयोग का नियोजन इस तरह होना चाहिए कि संसाधनहीन परिवारों को प्राथमिकता मिले और टिकाऊपन की शर्त पूरी हो। इसके लिए संस्थागत स्वरूप कुछ भी हो सकता है- सहकारी समिति, पंजीकृत सोसायटी, यूनियन, संगठन तथा गैर--मुनाफा और/या संयुक्त स्टॉक कम्पनी आदि। शर्त यह है कि उपरोक्त शर्तें पूरी हों। गणना के लिए हम यह मान लेते हैं कि इन कार्यस्थलों के संसाधन सबसे निचले 50% परिवारों को मुहैया कराए जाएंगे। यह समझना निहायत ज़रूरी है कि इन कार्यस्थलों से किस तरह के संसाधन मुहैया कराए जाएंगे।

प्रति परिवार प्रोसेसिंग योग्य बायोमास 3 टन है। इसके अलावा सेवा क्षेत्र के 10% के बराबर पड़ती भूमि से भी बायोमास प्राप्त होगा। अतः यह माना जा सकता है कि प्रति परिवार प्रोसेसिंग योग्य बायोमास की मात्रा 3.5 टन होगी। इसमें से औसतन 2 टन ऊर्जा उत्पादन में खपेगा। अर्थात् प्रति परिवार 1.5 टन बायोमास प्रोसेसिंग के लिए उपलब्ध है। इसके आधार पर जो कार्यस्थल बनेगा उसी का विवरण आगे तालिका 3.3 में दिया गया है।

तालिका 3.3

40 किलोवॉट एकीकृत कार्यस्थल	
योगदान देने वाले परिवार :	40
संसाधनहीन परिवार जिन्हें उत्पादन सुविधा में प्राथमिकता मिलेगी :	20
कार्यस्थल पर उपलब्ध उत्पादन संसाधन :	
(क) 60 टन प्रोसेसिंग योग्य बायोमास (प्रति परिवार 3 टन)	
(ख) 1,20000 किलोवॉट घण्टा बिजली (6000 प्रति परिवार)	
(ग) 84 टन कोयले के बराबर इस्तेमाल योग्य निम्न दरजे की ऊष्मा (फालतू ऊष्मा की रिकवरी से प्राप्त 42 टन प्रति परिवार)	

2 मेगावॉट एकीकृत कार्यस्थल	
योगदान देने वाले परिवार :	2000
संसाधनहीन परिवार :	1000
उत्पादन संसाधन :	
(क) 3000 टन प्रोसेसिंग योग्य बायोमास (3 टन/परिवार)	
(ख) 96,80,000 किलोवॉट घण्टा बिजली (9680 प्रति परिवार)	
(ग) 5,220 टन कोयले के बराबर इस्तेमाल योग्य मध्यम दरजे की ऊष्मा (फालतू ऊष्मा रिकवरी से) :	(5.2 टन प्रति परिवार)

इसके परिणाम काफी व्यापक हो सकते हैं। प्रति परिवार कुल ऊर्जा 40 किलोवॉट तथा 2 मेगावॉट इकाइयों में क्रमशः 10 टन व 20 टन कोयले के बराबर होगी। यदि हम मात्र बायोमास प्रोसेसिंग के उत्पादों से प्राप्त आमदनी को देखें, तो यह 18,000 रुपए प्रति परिवार होगी। इस तरह की विकेन्द्रित उत्पादन क्षमता उपलब्ध होने का बहुत महत्व है। थोड़े से और ईंधन के उपयोग से अथवा बिजली उत्पादन के एक हिस्से के एवज में हमें उच्च दरजे की ऊष्मा मिल सकती है जिसमें निम्न से मध्यम-उच्च तापमान प्राप्त हो सकेगा, सटीकता से नियंत्रित भट्टियां मिल सकेंगी। हम इस ऊर्जा को चाहें तो जैव-ईंधन के रूप में इस्तेमाल करें या बिजली या ऊष्मा के रूप में इस्तेमाल करें।

विश्वव्यापी महत्व

बहरहाल, हम छोटे पैमाने पर प्रस्तुत इस संभावना से बड़े पैमाने के नज़ारे पर लौटते हैं और इसके विश्वव्यापी महत्व को देखते हैं। रणनीति यह है कि शुरुआत 40 किलोवॉट कार्यस्थलों से की जाए और फिर क्रमशः दो मेगावॉट कार्यस्थल जोड़ते हुए एक संतुलन स्थापित किया जाए। गणना के लिहाज़ से हम यह मानकर चलते हैं कि 40 किलोवॉट

और 2 मेगावॉट इकाइयों की कुल उत्पादन क्षमता का अनुपात 1:2 रहेगा।

तब पूरे सेवा क्षेत्र का चित्र कुछ यों बनेगा:

योगदान देने वाले परिवार	:	2 लाख
40 किलोवॉट एकीकृत कार्यस्थल	:	17,500
2 मेगावॉट एकीकृत कार्यस्थल	:	700
कुल स्थापित क्षमता	:	2,10 मेगावॉट
कुल उत्पादन	:	10,976 मिलियन युनिट
कुल ज़रूरी निवेश	:	10,220 करोड़ रुपये
जिसमें से सौर घटक	:	6,000 करोड़ रुपए

यह जीविका निर्वाह से आगे का कदम है, एक आत्मनिर्भर, टिकाऊ, विकेन्द्रित औद्योगिक समाज की ओर। यहां हमने सिर्फ बुनियादी सेवा क्षेत्र तथा उसके उत्पादन को ही शामिल किया है। यह एक ऐसा दायरा है जिसमें इस तरह की प्रणालियों के विकास तथा ज़रूरी तकनीकी व वित्तीय सहयोग देने में सरकारी व सार्वजनिक क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस तरह के उत्पादन की अतिरिक्त संभावनाएं आर्थिक सेवा क्षेत्र में भी मौजूद हैं।

आर्थिक सेवा क्षेत्र में पानी का उपयोग 7,50,000 हैक्टर-मीटर अनुमानित है जो 225 लाख टन बायोमास उत्पादन की संभावना का प्रतिनिधित्व करता है। यदि इसमें से 10% भी ऊर्जा उत्पादन के लिए मिले, तो यह समूचे बुनियादी सेवा क्षेत्र से प्राप्त संसाधन के आधे के बराबर होगा। यह उन लोगों को उपलब्ध कराया जा सकता है जिनको संसाधनों के इस्तेमाल करने की प्राथमिकता नहीं दी गई थी। इसके अलावा, खासकर कच्छ और सौराष्ट्र में पवन ऊर्जा की विपुल संभावना है। इसे पवन-पन बिजली उत्पादन के द्वारा कारगर ढंग से इस्तेमाल किया जा सकता है। इसमें हम स्थानीय संसाधन भी जोड़ सकते हैं और बायोमास से होने वाली आमदनी में इज़ाफा कर सकते हैं। टिकाऊ व विकेन्द्रित संसाधन उपलब्धता के आधार पर संभावनाएं हमारी गणनाओं से कहीं ज़्यादा होंगी। दरअसल एकीकृत कार्यस्थलों की स्थापना तो टिकाऊ समृद्धि की दिशा में पहला कदम है।

उत्पादन प्रणालियां व कार्यस्थल आपस में जुड़कर अपने आप में व्यावहारिक इकाइयां बन जाएंगे। इसका अर्थ यह होगा कि यहां हमने जो संभावनाएं प्राथमिकता वाले परिवारों के लिए देखी हैं, वे दरअसल सेवा क्षेत्र की पूरी आबादी को उपलब्ध होंगी।

इस नई, वैकल्पिक ऊर्जा इन्फ्रास्ट्रक्चर का वैश्विक महत्व इस बात में निहित है कि इसमें विकेन्द्रित उत्पादन क्षमता विकसित हो रही है: इस ऊर्जा क्षमता का तर्कसंगत इस्तेमाल करें, तो यह प्रोसेस्ड बायोमास के ऊर्जा मूल्य से पांच गुना ज़्यादा आती है। प्रति परिवार 4 टन बायोमास का अर्थ है प्रति व्यक्ति 3000 किग्रा. कोयले के बराबर ऊर्जा। यह

ऊर्जा जीवन निर्वाह की ज़रूरतें पूरी करने के अतिरिक्त मिलेगी तथा घरेलू बिजली व पम्पिंग की ज़रूरतें तो स्थानीय रूप से उत्पादित बिजली से पूरी हो जाएंगी। अतः यह ऊर्जा में आत्म-निर्भरता का प्रतीक है:

(1) जीवन निर्वाह तथा जीवन निर्वाह हेतु ज़रूरी ऊर्जा की पूर्ति स्थानीय स्तर पर होगी तथा

(2) स्थानीय व सार्वजनिक प्रणाली के बीच होने वाला आदान-प्रदान विषमता से भरा न होगा-अभी तो स्थानीय निम्न ऊर्जा उत्पादों का लेन-देन केंद्रीय उत्पादों से होता है जिनका ऊर्जा मूल्य कहीं ज़्यादा है।

आज भारत में प्रति व्यक्ति 500 किग्रा. कोयले के बराबर ऊर्जा उपलब्ध है। ग्रामीण क्षेत्रों के लिए यह आंकड़ा शायद 200 किग्रा. ही होगा। विकेन्द्रित ऊर्जा उपलब्धि के महत्व को पूरी तरह समझने के लिए ज़रूरी है कि अन्तर्राष्ट्रीय ऊर्जा खपत आंकड़ों से तुलना की जाए, हालांकि इस तरह की तुलना की कई दिक्कतें हैं।

यहां यह कहना लाज़मी है कि प्रति व्यक्ति खपत को विकास का मापदण्ड मानने पर विकास का लक्ष्य ही ऊर्जा खपत बढ़ाना हो जाता है, जिस तरह से कृषि विकास का मापदण्ड उर्वरक खपत को बताया जाता है। अलबत्ता ऊर्जा खपत का सम्बंध एक वांछनीय जीवन स्तर से जोड़ा जाए तो इस तरह की तुलना महत्वपूर्ण हो जाती है। विकसित देशों में द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व प्रति व्यक्ति ऊर्जा खपत 5000 किग्रा. कोयले के बराबर थी। इसका आधे से ज़्यादा तो घरों को गर्म रखने तथा परिवहन में खपता था। भारत के सन्दर्भ में यह गैर ज़रूरी है। किसी भी विकेन्द्रित रूप से औद्योगिक समाज में यह ज़रूरी नहीं होगा। इसलिए इस हिस्से को छोड़ दें और यह मानें कि विकसित देशों में युद्ध-पूर्व का जीवन स्तर 2500 किग्रा. कोयले के बराबर ऊर्जा से व्यक्त होता है। इसकी तुलना में यह देखें कि वैकल्पिक ढांचे में प्रति व्यक्ति 3000 किग्रा. कोयले के बराबर ऊर्जा की उत्पादन क्षमता मौजूद है। अर्थात् वैकल्पिक ढांचे में यह क्षमता है कि विकसित देशों के युद्ध पूर्व जीवन स्तर के वांछनीय हिस्सों की पूर्ति कर सके।

इसके लिए संसाधन कहां से आएंगे?

हम अपने मूल उद्देश्य यानी सरदार सरोवर परियोजना के वैकल्पिक स्वरूप पर लौटते हैं। दूसरे खण्ड के अन्त में हमने बिजली उत्पादन के लिए 1,300 करोड़ रुपए रखे थे। किन्तु सेवा क्षेत्र में उत्पादित बायोमास के द्वारा बिजली उत्पादन की विशाल क्षमता को देखते हुए यह पृथक आवंटन फालतू लगता है। अतः हम इस 1,300 करोड़ को प्रासंगिक खर्चों के लिए रख छोड़ेंगे। संसाधन जुटाने के लिए यहां हम एक भिन्न तरीका सुझाएंगे।

अव्वल तो सरदार सरोवर परियोजना का वैकल्पिक स्वरूप स्वीकार कर लेने पर प्रमुख आलोचनाएं तो समाप्त हो जाएंगी और वैकल्पिक ढांचा टिकाऊपन

यानी सस्टेनेबिलिटी के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय सहायता का हकदार होगा। जिन अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने अपना हाथ खींच लिया है उन्हें पुनर्विचार के लिए राजी किया जा सकेगा। वैसे भी पर्यावरण के लिहाज़ से टिकाऊ परियोजनाओं के लिए अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय सहायता की दलील ज़्यादा पुख्ता है। इसके अलावा कार्बन डाई ऑक्साइड टैक्स सरीखे ऐसे कोष/स्रोत उपलब्ध हैं जो खासतौर पर टिकाऊ विकास हेतु बने हैं।

दूसरी बात तकरीबन 11,700 करोड़ रुपये की परियोजना लागत में से वाटरशेड विकास (2,300 करोड़) तथा स्थानीय जलाशय विकास (650 करोड़) सामान्यतः सरदार सरोवर परियोजना के अंग न होते। ये राशि स्थानीय विकास परियोजनाओं के रूप में वैसे भी खर्च की जाती, चाहे इन्हें सरदार सरोवर के साथ एकीकृत न किया जाता। अतः इस 3,000 करोड़ के खर्च को माना जा सकता है कि सरकार को देर सबेर करना ही था। दूसरे शब्दों में, सरकार से कहा जा सकता है कि वह स्थानीय रोज़गार व आमदनी, हुनर विकास व प्रशिक्षण पर होने वाले खर्च को वहन करे। यह करीब 3,750 करोड़ रुपए आता है। यह गैर-वाज़िब न होगा कि केन्द्र व राज्य सरकारों से कहा जाए कि वे मिलकर 3 से 4 हजार करोड़ रुपए का योगदान दें तथा इसे स्थानीय रोज़गार व आमदनी, संसाधन विकास, हुनर विकास व प्रशिक्षण कार्यक्रम का अंग मानें। दस वर्षों की अवधि में होने वाला यह खर्च 300 से 400 करोड़ रुपये प्रति वर्ष होगा। इसके दौरान हुनर व क्षमताओं का उल्लेखनीय विकास होगा। तब बाहरी मदद की ज़रूरत क्रमशः कम होती जाएगी।

तीसरी चीज़ कि सरदार सरोवर से बिजली उत्पादन हेतु ऊर्जा बांड बेचने की बजाय सरकार को एकीकृत कार्यस्थल हेतु संसाधन जुटाने पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। सरदार सरोवर के बिजली उत्पादन के उपयोग में पहली प्राथमिकता सेवा क्षेत्र में समतामूलक व टिकाऊ पानी उपयोग के लिए होनी चाहिए और दूसरा नम्बर एकीकृत कार्यस्थलों को सहारा देने का होना चाहिए। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, बुनियादी सेवा क्षेत्र तथा आर्थिक सेवा क्षेत्र में कुल 2,100 मेगावॉट एवं 11,000 मिलियन युनिट बिजली उत्पादन की क्षमता मौजूद है। इस बुनियादी ऊर्जा ढांचे का वित्तीय इंतज़ाम करने के कई तरीके हो सकते हैं।

बुनियादी सेवा क्षेत्र में क्षमता स्थापित करने के लिए निवेश 10,000 करोड़ रुपए का होगा।

इसमें से 6000 करोड़ सौर अंश के लिए और 4200 करोड़ गैर-सौर अंश के लिए है। हमने सौर घटक पर 4 प्रतिशत ब्याज दर और गैर-सौर घटक पर 8 प्रतिशत ब्याज दर का प्रावधान रखा है। वित्तीय इंतज़ाम के लिए बांड जारी करना एक तरीका हो सकता है। अलबत्ता हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि इस निवेश से सरकार को भी लाभ होगा। इस परियोजना को वित्तीय सहायता देकर सरकार मात्र 3388 मिलियन युनिट कोयले के तुल्य ऊर्जा से 10,976 मिलियन युनिट बिजली उत्पादन करेगी। यानी जहां तक सरकार का सवाल है तो उसे 7588 मिलियन युनिट कोयले के तुल्य बचत हो रही है। यह 60 लाख टन कोयले के बराबर है जिसकी कीमत 750 करोड़ रुपए होती है। परियोजना के संचालन रखरखाव तथा घिसारा निकालने के बाद निवेश पर लाभ दर 6000 x 0.04 + 4200 x 0.08 + 750 = 240 + 336 + 750 = 1326 करोड़ रुपए होती है। यह 10,200 करोड़ रुपए के निवेश पर 13% लाभ दर के बराबर है। हमारा सुझाव है कि सरकार को 6000 करोड़ के निवेश को पूंजीगत सबसिडी मानना चाहिए। ऐसा करने

पर शेष 4200 करोड़ पर प्रतिशत या उससे भी ज़्यादा ब्याज दर मिल सकेगी। तब यह निवेश सरकार द्वारा प्रदत्त किसी भी निवेश की टक्कर में होगा।

यहां अभी हमने बहाली योग्य ऊर्जा की परियोजनाओं के लिए मिल सकने वाली अन्तर्राष्ट्रीय मदद की बात नहीं जोड़ी है। हालांकि ऐसी मदद मिलने पर बोझ और भी कम हो जाएगा मगर हम इसे कार्यस्थल निर्मित करने की पूर्व शर्त के रूप में नहीं रखना चाहेंगे। कार्यस्थल अपने आप में व्यावहारिक है और सरकार को चाहिए कि वह इन कार्यस्थलों द्वारा प्रस्तुत संभावनाओं के मद्देनज़र अपने ऊर्जा नियोजन पर संजीदा पुनर्विचार करे।

जहां तक आर्थिक सेवा क्षेत्र में उत्पादित बायोमास में से 10 प्रतिशत से निर्मित वस्तुओं का सवाल है, तो हम यह कहना चाहेंगे कि ये अपने आप में व्यावहारिक आर्थिक परियोजनाएं हैं। सरकार को चाहिए कि वह इन्हें भरपूर सुविधा प्रदान करे। ये परियोजनाएं सरकारी संस्थाओं, सहकारी समितियों, संयुक्त क्षेत्र या निजी क्षेत्र की हो सकती हैं। शर्त बस यह है कि इनमें बिजली उत्पादन में सौर-ईंधन-कोयला खपत का निर्धारित अनुपात रखा जाए, 50 प्रतिशत बिजली निर्धारित कीमत पर केन्द्रीय ग्रिड को बेची जाए तथा टिकाऊपन व प्रदूषण नियंत्रण के मापदण्डों का पालन किया जाए।

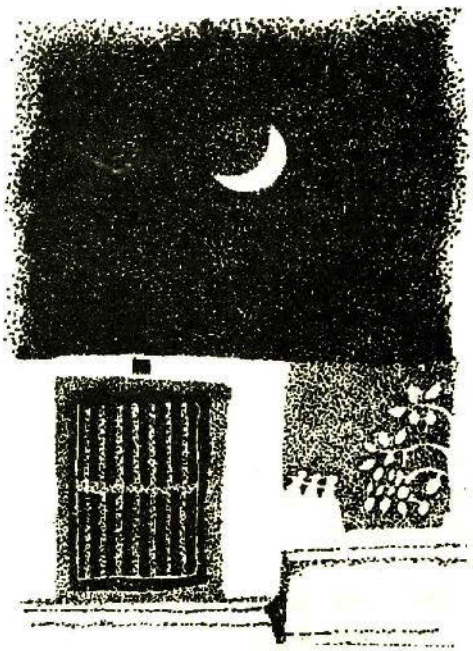

निष्कर्ष

इस सबमें कितना समय लगेगा?

पुनर्विचार के रास्ते में एक रुकावट इस भावना के कारण आ जाती है कि लगता है इसकी वजह से परियोजना की प्रक्रिया में अनावश्यक विलम्ब हो रहा है। गुजरात ने नर्मदा के पानी का काफी इंतज़ार किया है और अब कोई भी विलम्ब अस्वीकर्य है। इसलिए यह ज़रूरी हो जाता है कि इस बात का आकलन किया जाए कि पुनर्रचना का परियोजना की समयावधि पर क्या असर होगा।

हमारे विचार में पुनर्विचार में किया जा रहा विलम्ब ही परियोजना में विलम्ब की सबसे प्रमुख वजह है। एक बार पुनर्रचना व उसके सिद्धांतों को स्वीकार कर लिया जाए तो काम दो छोरों से शुरू हो सकता है। ये दो छोर होंगे-सेवा क्षेत्र वॉटरशेड उपचार योजना और नर्मदा का केन्द्रीय तंत्र।

कार्य का नियोजन कुछ इस तरह किया जा सकता है कि पूरी परियोजना, सरदार परियोजना के लिए निर्धारित अवधि में ही पूरी हो जाए। वैसे भी कच्छ के अन्तिम क्षेत्रों में तो पानी सन् 2020 में ही पहुंचने वाला था। वैकल्पिक ढांचे में पानी जल्दी उपलब्ध कराया जा सकता है क्योंकि इसमें निर्माण कार्य इस किस्म का नहीं है जिसे चन्द ठेकेदार ही करने में सक्षम हों। इसके अलावा स्थानीय स्रोतों के विकास के फलस्वरूप लाभ और भी जल्दी मिलने लगेंगे। सेवा क्षेत्र का विस्तार भी चरणबद्ध होगा तथा यह केन्द्रीय तंत्र के साथ तालमेल से होगा।

एक बार पुनर्रचना पर आम सहमति हो जाने पर तीन चरणों में कार्य सम्पादन योजना बनाई जा सकती है। प्रत्येक चरण निम्नानुसार पांच वर्ष का रखा जा सकता है। पहले चरण में स्थानीय जलाशयों के इर्द गिर्द जल-तंत्र का विकास तथा सामाजिक व्यवस्था का विकास होगा। यह कार्य शुरू में कुछ इलाकों में प्रायोगिक स्तर पर किया जाएगा तथा इसके दौरान मापदण्डों को अंतिम रूप दिया जाएगा और डिज़ाइन के सिद्धांतों का मानकीकरण भी कर लिया जाएगा। इसी समय के दौरान शुद्धतः तकनीकी पायलट योजनाएं भी उठाई जाएंगी ताकि सहउत्पादन प्रणालियों के तकनीकी मापदण्ड निर्धारित किए जा सकें। पायलट क्षेत्रों के अनुभव के आधार पर पूरे सेवा क्षेत्र में जल-तंत्र का विकास शुरू किया जा सकेगा जिसे दूसरे व तीसरे चरण में पूरा कर लिया जाएगा। इसी के साथ-साथ बायोमास संग्रह पर आधारित ऊर्जा उत्पादन व कार्यस्थलों के पायलट प्रोजेक्ट हाथ में लिए जाएंगे। तब तीसरा चरण मूलतः विस्तार का चरण होगा जब पानी व ऊर्जा प्रणाली को पूरे सेवा क्षेत्र में फैलाया जाएगा। यहां लचीलेपन से जुड़े कुछ मुद्दे भी सामने आते हैं। दाते ने अपने प्रस्तुतीकरण में इनका समावेश किया था। किन्तु यहां हम उन मुद्दों को नहीं छू रहे हैं। अन्ततः यदि यह ध्यान रखा जाए कि वैकल्पिक पुर्नरचना का काम अपने आप में आमदनी जनक है तथा इसके दौरान हुनर का विकास होगा और स्थानीय संसाधनों का विकास होगा, तो यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि परियोजना के लाभ काफी हद तक छठवें वर्ष में ही मिलना शुरू हो जाएंगे।

यदि बांध को पूरा करना है, तो पुर्नवास की प्रक्रिया को प्राथमिकता देनी होगी। आखिरकार परियोजना की सबसे बड़ी लागत तो विस्थापन ही है। यह स्पष्ट किया जा चुका है कि मौजूदा स्वरूप में यह परियोजना 36,000 हैक्टर क्षेत्र से होने वाले विस्थापितों के पुर्नवास का काम करने में असमर्थ है। वैकल्पिक डिज़ाइन में यह क्षेत्र 10,800 हैक्टर ही रह जाता है तथा पुर्नवास हेतु नज़दीकी क्षेत्र में 10,000 हैक्टर के रकबे का प्रावधान किया गया है। इस क्षेत्र के लिए जल-तंत्र का विकास बांध के पीछे पानी संग्रह पर निर्भर नहीं है। इस क्षेत्र के पानी तंत्र के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए तथा बांध निर्माण व बांध में पानी भरने का तालमेल विस्थापितों के पुर्नवास के साथ होना चाहिए। इसकी वजह से सेवा क्षेत्र को मिलने वाले लाभों पर कोई असर नहीं पड़ेगा क्योंकि वैकल्पिक डिज़ाइन में सेवा क्षेत्र को मिलने वाले लाभ नर्मदा पानी की प्राप्ति पर निर्भर नहीं हैं। वैकल्पिक डिज़ाइन में नर्मदा पानी की प्राप्ति दरअसल स्थानीय भण्डार के विकास का अंतिम बिन्दु हैं, शुरुआत नहीं।

अतः हमारा सुझाव है कि निम्नलिखित कदम तत्काल उठाए जाएं :

(1) सरदार सरोवर तथा नर्मदा घाटी परियोजनाओं की मानवीय कीमत, ऊर्जा की लागत, तथा उनकी गैर-टिकाऊ व विषमता मूलक प्रकृति के लिहाज़ से काफी आलोचना हुई है। इस आलोचना के मद्दे नज़र परियोजना पर तत्काल पुनर्विचार किया जाना चाहिए तथा सरदार सरोवर परियोजना की पुनर्रचना निम्नांकित आधारों पर की जानी चाहिए:-

(क) विस्थापन और खासकर पूरे के पूरे गांवों का विस्थापन इतना कम हो कि विस्थापितों को उसी इलाके में, उनके अपने सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में बसाया जा सके। यह प्रक्रिया वास्तव में परियोजना के प्रभाव क्षेत्र में नर्मदा के पानी पर आधारित विकास प्रक्रिया के हिस्से के रूप में होनी चाहिए।

(ख) ऐसा करते हुए यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि ट्रायबूनल द्वारा गुजरात के आवंटित पानी के लाभों में कोई कमी न आए। साथ ही यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि यह पानी प्राथमिकता के आधार पर कच्छ, सौराष्ट्र व उत्तर गुजरात को मिले।

(ग) इस पानी की उपलब्धता के साथ पानी के पुनरुत्पादक (टिकाऊ) व समतामूलक इस्तेमाल की शर्त लगाई जानी चाहिए ताकि पुनरुत्पादक समृद्धि का रास्ता खुल सके।

(घ) उपरोक्त पुनर्रचना करते हुए यह भी ध्यान रखा जाए कि अभी तक जितना निर्माण कार्य हो चुका है तथा जितना पैसा खर्च हो चुका है उसका अधिकतम भाग वैकल्पिक डिज़ाइन में प्रयुक्त हो सके ताकि बरबादी न हो।

(2) पुनर्विचार की प्रक्रिया सार्वजनिक हो ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उपरोक्त सिद्धांतों का कहां तक ख्याल रखा गया है। इस प्रक्रिया में विकल्प के सारे पहलुओं पर व्यापक चर्चा हो।

(3) संभावित विस्थापितों तथा गुजरात के सूखाग्रस्त क्षेत्र के लोगों को इस चर्चा में भागीदार बनाया जाए तथा इन दोनों तबकों को स्वीकार्य विकल्प ही चुना जाए।

(4) इस प्रक्रिया के संपन्न होने तक बांध व नहर पर चल रहा निर्माण कार्य रोक दिया जाए तथा पानी न भरा जाए।

मानवीय लागत परियोजना की सबसे बड़ी लागत होती है। किन्तु यही एकमात्र कारण नहीं है जिसकी वजह से पानी व ऊर्जा सम्बंधी परियोजनाओं पर पुनर्विचार ज़रूरी हो जाता है। दरअसल हम पानी व ऊर्जा क्षेत्र में एक गहरे संकट में फंसे हुए हैं जिसका महत्व आज नहीं समझा जा रहा है। इसकी गम्भीरता को समझने के लिए हम पाठकों का ध्यान दाते द्वारा पुनर्विचार समिति के समक्ष दिए गए बयान की ओर दिलाना चाहेंगे। उस बयान के निष्कर्ष में कहा गया है : "दरअसल, पुनर्विचार में ऐसे मुद्दे जुड़े हैं जिनके महत्व को तत्काल पहचानना ज़रूरी है। सरदार सरोवर परियोजना की बहस आमतौर पर छोटे बनाम बड़े तंत्र की बहस रही है। यह पहचानना ज़रूरी है कि ज़्यादा अहम प्रश्न यह है कि पुनरुत्पादक कृषि प्रणाली व ऊर्जा में आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ने का तात्पर्य क्या है। तब प्रश्न यह हो जाता है कि बड़े

व छोटे तंत्र का एकीकरण किस प्रकार किया जाए ताकि पुनरुत्पादक कृषि व ऊर्जा में आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ा जा सके तथा इसे स्थिरता प्रदान की जा सके।"

"पुनरुत्पादक खेती में पानी समेत किसी भी बाहरी इनपुट का कार्य तथा उच्च इनपुट वाली खेती में बाहरी इनपुट का कार्य बिलकुल अलग-अलग होते हैं। उच्च इनपुट वाली खेती तो शुद्धतः बाहरी इनपुट पर निर्भर होती है। दूसरी तरफ पुनरुत्पादक खेती में बाहरी पानी की थोड़ी मात्रा प्राथमिक उत्पादकता को बढ़ाने तथा सुदृढ़ करने में सहायक होती है बशर्ते कि बाहरी पानी की मात्रा व डिलीवरी के समय पर अच्छा नियंत्रण हो। इस परिप्रेक्ष्य में स्थानीय सतही व भूमिगत जल भण्डारों का महत्व बहुत ज़्यादा होता है तथा तब बड़े-बड़े तंत्रों में ऊंचाई पर जल संग्रह की ज़रूरत बहुत कम रह जाती है। तब सम्बंधित सामाजिक समस्याओं को काफी हद तक कम किया जा सकता है।"

इसके साथ ही ऊर्जा सम्बंधी परिप्रेक्ष्य में भी बदलाव आया है। पूर्व के तंत्रों में पम्पिंग को नकारने की निहीत प्रवृत्ति रही है जिसकी वजह से कमान क्षेत्र जलाशय के इर्द-गिर्द ही रहता है और पूरा नियंत्रण केन्द्रीकृत होता है। यह स्वीकार करना होगा कि व्यापक व विकेन्द्रित, लिहाज़ा समतामूलक पानी वितरण हेतु पानी को पम्प करना एक अनिवार्य शर्त है ताकि पुनरुत्पादक खेती हेतु पानी मिल सके। जैसा कि कहा जा चुका है, यदि ऊर्जा में आत्मनिर्भरता के साथ समझौता न किया जाए तो यह चिंता का कोई कारण नहीं है क्योंकि पुनरुत्पादक खेती व बहाली योग्य ऊर्जा स्रोत आसानी से इस ऊर्जा की पूर्ति कर सकते हैं।

यह परिवर्तन बहुत समय से लम्बित है और इस मुद्दे को जितना टाला जाएगा, पानी व ऊर्जा का संकट उतना ही गहराता जाएगा। इस मुद्दे पर विचार करने की बात को इस आधार पर दरकिनार करने की कोशिश होती है कि कुछ निर्णय हो चुके हैं या पानी के बंटवारों के कुछ अवार्ड घोषित हो चुके हैं। यहां यह ध्यान रखना ज़रूरी हो जाता है कि अधिकतर निर्माणाधीन या लंबित नदी घाटी परियोजनाएं साठ के दशक के नियोजन तथा उच्च इनपुट वाली खेती के अनुरूप तैयार हुई हैं। तब से लेकर आज तक पानी व ऊर्जा क्षेत्र के सारे पहलुओं से सम्बंधित विचारों में व्यापक बदलाव आ चुके हैं। ऐसी परिस्थिति में किसी अवार्ड को शब्दशः उसकी सारी तकनीकी बारीकियों समेत लागू करने का आग्रह गलतियों को दुगना-चौगुना करने जैसा है। सारी परियोजनाओं पर पुनर्विचार लम्बे समय से टल रहा है। अवार्डों को ऐतिहासिक फैसलों के रूप में देखना चाहिए तथा इनकी भावना, यानी लाभों के बंटवारे के अनुपात, का आदर किया जाना चाहिए। किन्तु इनके तकनीकी मापदण्डों से चिपकना ज़रूरी नहीं है। मौजूदा परियोजनाओं को रोक दिया जाना चाहिए। इनको पुनः डिज़ाइन किया जाना चाहिए ताकि पुरुत्पादक खेती तथा ऊर्जा में आत्मनिर्भरता का मार्ग प्रशस्त हो। यदि हम इसका ध्यान रखे बगैर आगे बढ़ते जाएंगे तो शायद स्थिति इतनी बिगड़ जाएगी कि पानी व ऊर्जा तंत्र लगभग ठप्प होने की स्थिति आ जाएगी।

नक्शा 1 : नहर का प्रस्तावित मार्ग क्र. 1

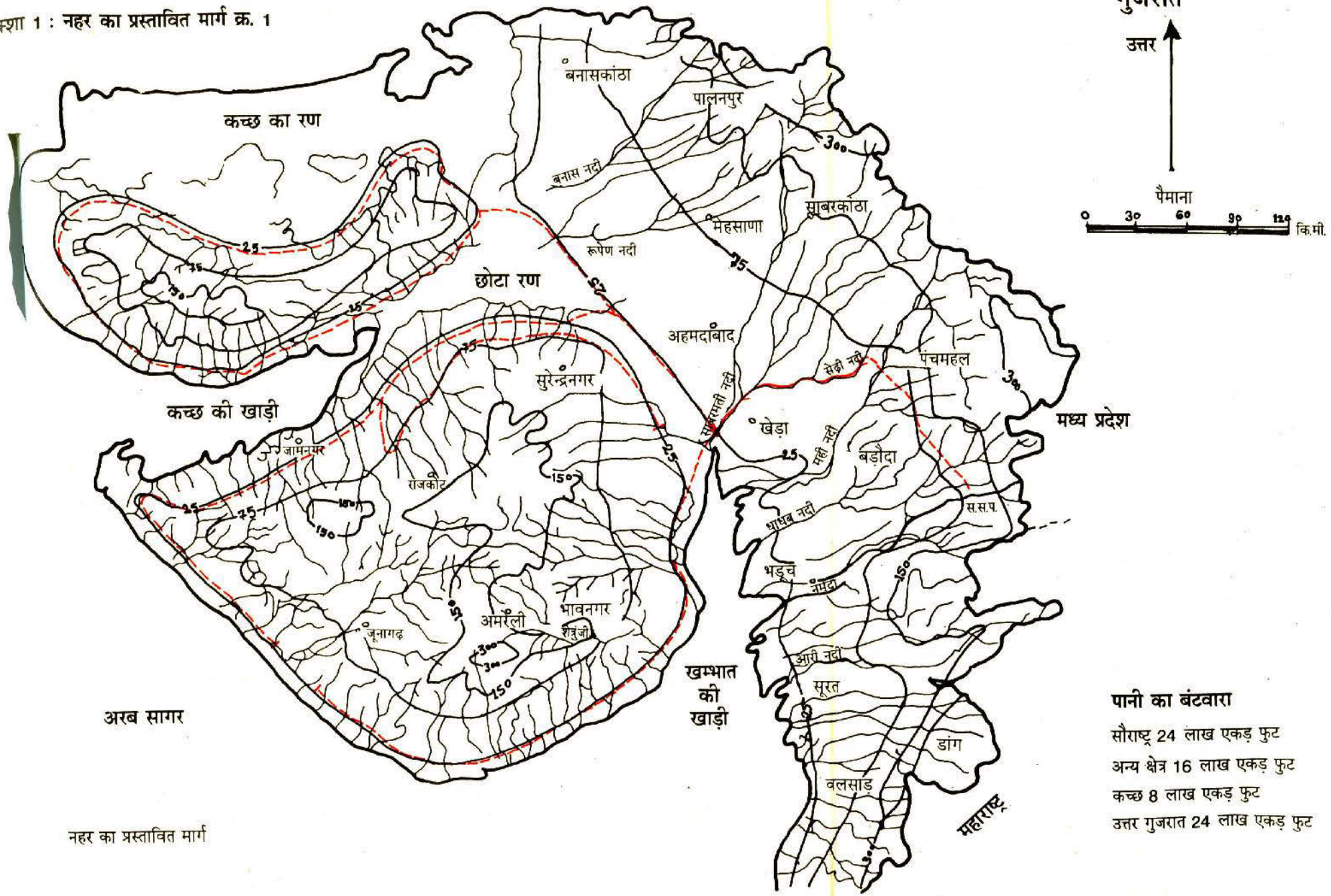

पानी का बंटवारा

सौराष्ट्र 24 लाख एकड़ फुट
अन्य क्षेत्र 16 लाख एकड़ फुट
कच्छ 8 लाख एकड़ फुट
उत्तर गुजरात 24 लाख एकड़ फुट

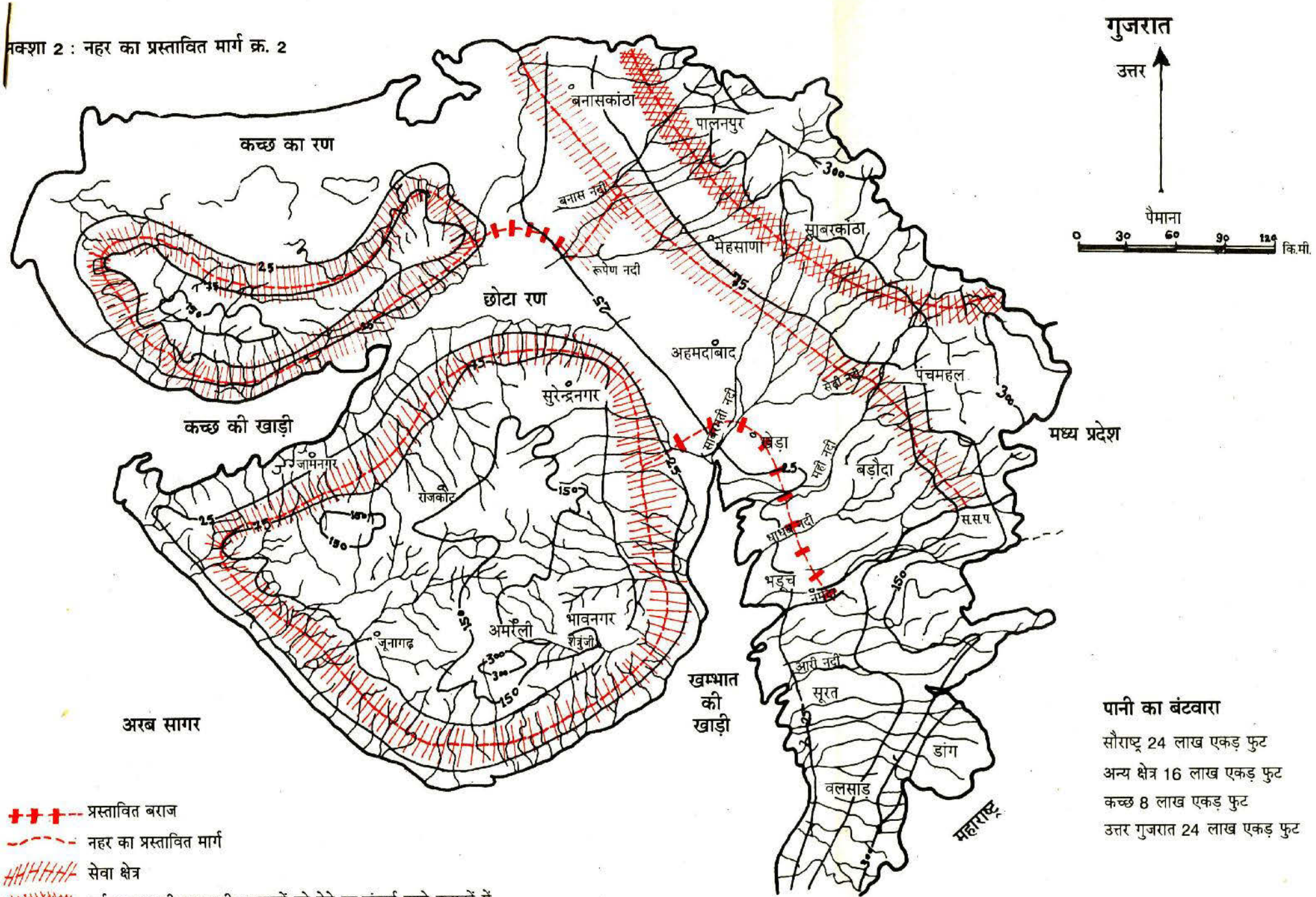

नक्शा 2 : नहर का प्रस्तावित मार्ग क्र. 2